जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2531

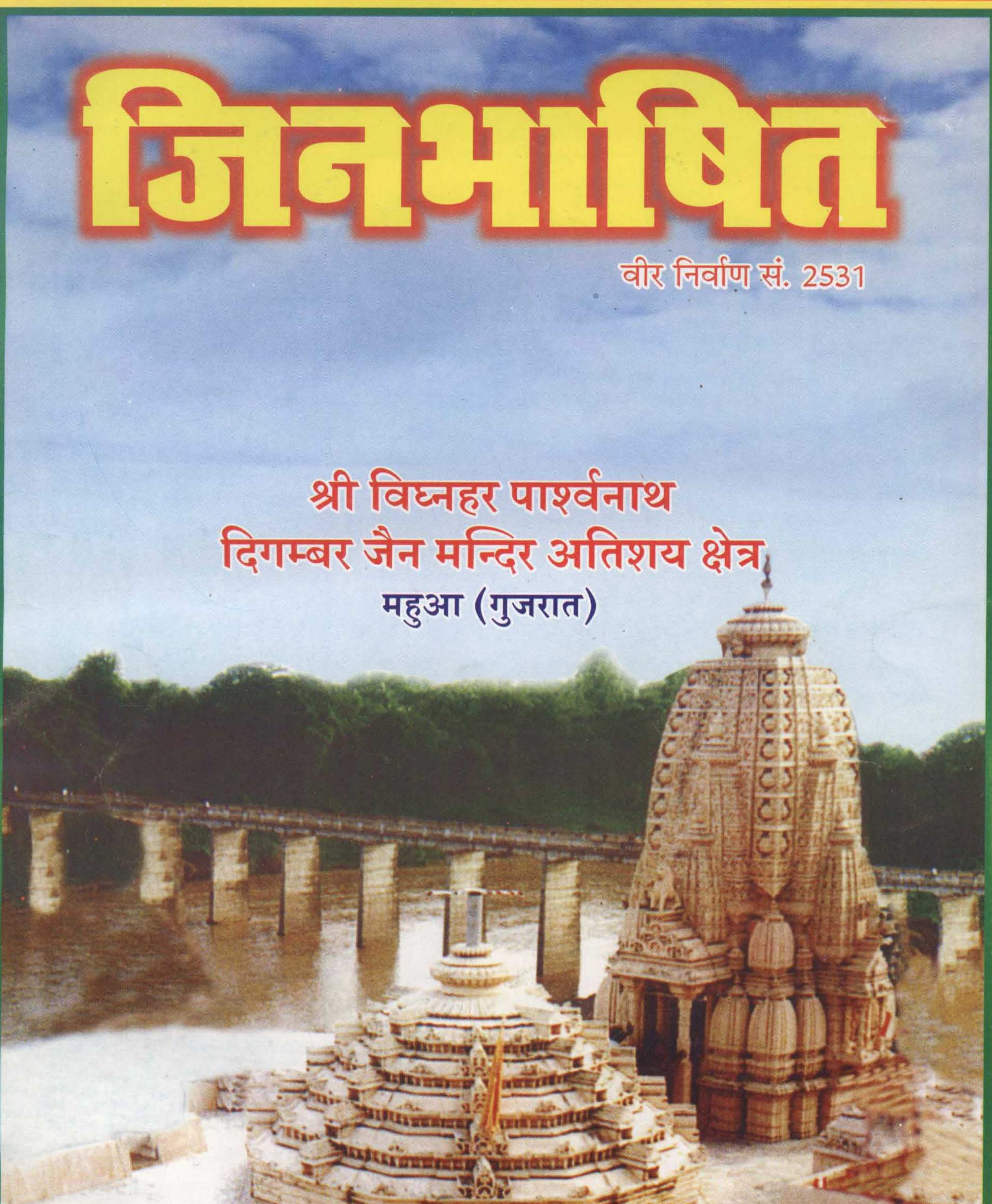

श्री विघ्नहर पार्श्वनाथ
दिगम्बर जैन मन्दिर अतिशय क्षेत्र
महुआ (गुजरात)

आश्विन, वि.सं. 2062

अक्टूबर, 2005

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

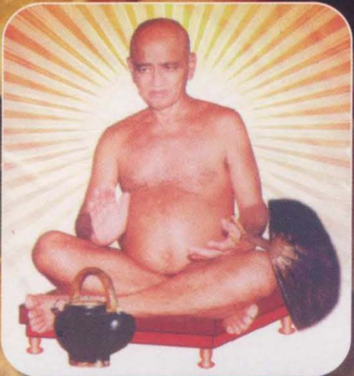

मंगलभावना

• आचार्य श्री विद्यासागर जी

सागर सम गंभीर मैं बनूँ चन्द्र-सम शान्त।
गगन तुल्य स्वाश्रित रहूँ, हरूँ दीप-सम ध्वान्त ॥ १ ॥

चिर संचित सब कर्म को, राख करूँ बन आग।
तप्त आत्म को शान्त भी, करूँ बनूँ गतराग ॥ २ ॥

तन मन को तप से तपा, स्वर्ण बनूँ छविमान।
भक्त बनूँ भगवान् को, भजूँ बनूँ भगवान् ॥ ३ ॥

भद्र बनूँ बस भद्रता, जीवन का शृंगार।
दृव्य-दृष्टि में निहित है, सुख का वह संचार ॥ ४ ॥

लोकेषण की चाह ना, सुर सुख की ना प्यास।
विद्यासागर बस बनूँ, करूँ स्वपद में वास ॥ ५ ॥

फूल बिछाकर पन्थ में, पर-प्रति बन अनुकूल।
शूल बिछाकर भूल से, मत बन तू प्रतिकूल ॥ ६ ॥

यम,दम,शम,सम तुम धरो, क्रमशः कम श्रम होय।
नर से नारायण बनो, अनुपम अधिगम होय ॥ ७ ॥

साधु बने समता धरो, समयसार का सार।
गति पंचम मिलती तभी, मिटती हैं गति चार ॥ ८ ॥

स्वीकृत हो मम नमन ये, जय-जय-जय 'जयसेन'।
जैन बना अब जिन बनूँ, मन रटता दिन रैन ॥ ९ ॥

साधु बनो, न स्वादु बनो, साध्य सिद्ध हो जाय।
गमनागमन तभी मिटे, पाप-पुण्य खो जाय ॥ १० ॥

रत्नत्रय में रत रहो, रहो राग से दूर।
विद्यासागर तुम बनो, सुख पावो भरपूर ॥ ११ ॥

गोमटेश के चरण में, नत हो बारम्बार।
विद्यासागर मैं बनूँ, भव-सागर कर पार ॥ १२ ॥

यही तत्त्व दर्शन रहा, निज दर्शन का हेतु।
जिन-दर्शन का सार है, भव-सागर का सेतु ॥ १३ ॥

मेटे वाद-विवाद को, निर्विवाद स्याद्वाद।
सब वादों को खुश करे, पुनि-पुनि कर संवाद ॥ १४ ॥

तजो रजो गुण-साम्य को, सजो भजो निज धर्म।
शर्म मिले भव दुख मिटे, आशु मिटे वसु कर्म ॥ १५ ॥

शाश्वत निधि का धाम हो, क्यों बनता तू दीन।
है उसको बस देख ले, निज में होकर लीन ॥ १६ ॥

समय-समय 'पर' समय में, सविनय समता धार।
समल संग सम्बन्ध तज, रम जा सुख पा सार ॥ १७ ॥

भव-भव भव-वन भ्रमित हो, भ्रमता-भ्रमता काल।
बीता अनन्त वीर्य बिन, बिन सुख, बिन वृष-सार ॥ १८ ॥

पर पद, निज पद, जान तज, पर पद, भज निज काम।
परम पदारथ फल मिले, पल-पल जप निज नाम ॥ १९ ॥

निज गुण कर्ता आत्म है, पर कर्ता पर आप।
इस विधि जाने मुनि सभी, निज-रत हो तज पाप ॥ २० ॥

पाप प्रथम मिटता प्रथम, तजो पुण्य-फल भोग।
पुनः पुण्य मिटता धरो, आतम-निर्मल योग ॥ २१ ॥

राग-द्वेष अरु मोह से, रंजित वह उपयोग।
वसु विध-विधि का नियम से, पाता दुख कर योग ॥ २२ ॥

विराग समकित मुनि लिए, जीता जीवन सार।
कर्मास्रव से तब बचे, निज में करें विहार ॥ २३ ॥

रागादिक के हेतु को, तजते अम्बर छाँव।
रागादिक पुनि मुनि मिटा, भजते संवर भाव ॥ २४ ॥

'दोहादोहनशतक' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि. नं. UP/HIN/29933/24/1/2001-TC डाक पंजीयन क्र.-म.प्र./भोपाल/588/2003-05

अक्टूबर 2005

मासिक

जिनभाषित

वर्ष 4, अङ्क 9

सम्पादक
प्रो. रतनचन्द्र जैन

◆

कार्यालय
ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल- 462 039 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-2424666

◆

सहयोगी सम्पादक
पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया,
(मदनगंज किशनगढ़)
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर

◆

शिरोमणि संरक्षक
श्री रतनलाल कंवरलाल पाटनी
(आर.के. मार्बल)
किशनगढ़ (राज.)

श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

◆

प्रकाशक
सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा-282002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-2851428, 2852278

◆

सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक	5,00,000 रु.
परम संरक्षक	51,000 रु.
संरक्षक	5,000 रु.
आजीवन	500 रु.
वार्षिक	100 रु.
एक प्रति	10 रु.

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

◆ **मंगल भावना :** आ.पृ. 2
: आचार्य श्री विद्यासागर जी
◆ **जैन उपासना :** 2
◆ **प्रवचन** : साधु की नहीं, अपनी चिन्ता करो 4
: मुनिश्री सुधासागर जी
◆ **लेख**
● त्रिवर्णाचारों और संहिता ग्रन्थों का इतिहास 5
: स्व. पं. मिलापचन्द्र कटारिया
● चतुर्थगुणस्थान में शुद्धोपयोग नहीं होता 7
: पं. जवाहरलाल जी शास्त्री
● पृथ्वी का घूमना वास्तुशास्त्र को निरर्थक सिद्ध करता है 9
: डॉ. धन्नालाल जैन
● आचार्य समन्तभद्र और उनकी स्तुतिपरक रचनाएँ 10
: प्राचार्य पं. निहालचन्द्र जैन
● परिग्रह-परिमाण व्रत और पं. जगन्मोहनलाल जी शास्त्री 13
: ब्र. अमरचन्द जैन
● गुजरात राज्य के जूनागढ़ जिले में स्थित प्रमुख जैन तीर्थ श्री गिरनारजी पर्वत पर अतिक्रमण 14
: एन.के. सेठी
● मेढ़कों ने ली राहत की साँस 17
: डॉ. ज्योति जैन
● संस्कार से संस्कृति के जुड़ते तार 19
: डॉ. वन्दना जैन
◆ **क्षेत्र परिचय** : अतिशय क्षेत्र बीनाजी (बारहा) 21
◆ **जिज्ञासा-समाधान** : पं. रतनलाल बैनाड़ा 23
● नमक का संकट 26
: पुलक गोयल
◆ **बोधकथा** : अध:पतन का कारण 18
: डॉ. आराधना जैन 'स्वतंत्र'
◆ **तीर्थंकर परिचय :**
● श्री भगवान् अजितनाथ जी 20
● श्री भगवान् सम्भवनाथ जी 28
◆ **कविता** : युवा-पीढ़ी 16
: मनोज जैन 'मधुर'
◆ **मुर्शिदाबाद दि. जैन समाज का पत्र** 27
◆ **समाचार** 29-32

लेखक के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
जिनभाषित से सम्बन्धित समस्त विवादों के लिए न्याय क्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

जैन उपासना

जैन उपासना का लक्ष्य है सर्वदु:खों से मुक्ति प्राप्त कर आत्मा से परमात्मा बन जाना। आत्मविकास के लिए यहाँ बाह्य साधनों को भी लक्ष्य नहीं किया है अपितु शरीर और आत्मा को साधन मानकर साध्य की प्राप्ति करना बताया है। आचार्य मानतुंग स्वामी भक्तामर स्तोत्र में कहते हैं कि:

नात्यद्भुतं भुवन भूषण! भूतनाथ,
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः।
तुल्याभवन्ति भवतो ननु तेन किंवा,
भूत्याश्रितं य इहनात्म समं करोति॥ १०॥

अर्थात् हे संसार के भूषण और प्राणियों के नाथ! सच्चे गुणों के द्वारा आपकी स्तुति करने वाले पुरुष पृथ्वी पर आपके बराबर हो जाते हैं; यह भारी आश्चर्य की बात नहीं; क्योंकि ऐसे स्वामी से कुछ भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता जो इस लोक में अपने आधीन पुरुष को सम्पत्ति के द्वारा अपने बराबर नहीं करता।

अन्य धर्म जहाँ एकात्म की बात कर सभी प्राणियों को परमात्मा का अंश मानते हैं वहीं जैनधर्म सभी में एक जैसी आत्मा मानकर आत्म विकास का बराबर अधिकार देता है। हमारी उपासना पद्धति समतावादी दर्शन पर आधारित है। जहाँ व्यक्त्योदय, वर्गोदय नहीं अपितु सर्वोदय को लक्ष्य रखा गया है। हमारे तीर्थंकर भी कहते हैं कि बनो तुम भी वैसे, जैसा कि मैं हूँ।

जैन उपासना का एक लक्ष्य बंधन मुक्ति भी है। सांसारिक बंधन भी प्रभुनाम स्मरण से खुल जाते हैं। आचार्य मानतुंग के अनुसार :

आपादकण्ठमुरुशृङ्खलवेष्टिताङ्गाः,
गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजङ्घाः।
त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः,
सद्यःस्वयं विगतबन्धभया भवन्ति॥ ४६॥

अर्थात् पैरों से गले तक बड़ी-बड़ी जंजीरों से जिनके अंग वेष्टित हैं तथा अत्यन्त बड़ी-बड़ी बेड़ियों के अग्रभाग से जिनकी जाँघें छिल गई हैं, ऐसे मनुष्य आपके नाम रूपी मंत्र का निरन्तर स्मरण करते हुए तत्क्षण अपने आप बन्धन के भय से रहित हो जाते हैं।

जैन परम्परा एक ईश्वर में विश्वास करती है जो विशुद्ध आत्मा का प्रतीक है। इस परमात्म पद को सभी प्राप्त कर सकते हैं। जो लोग ईश्वर को कर्त्ता और हंता मानते हैं जैनधर्म उसका खण्डन करता है। आचार्य मानतुंग कहते हैं कि :

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धि बोधात्।
त्वं शङ्करोऽसि भुवनत्रयशङ्करत्वात्।
धातासि धीर! शिवमार्गविधेर्विधानाद्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन्! पुरुषोत्तमोऽसि॥ २५॥

अर्थात् हे धीर! देवों अथवा विद्वानों द्वारा पूजित ज्ञान वाले होने से आप ही बुद्ध हो, तीनों लोकों को सुख करने वाले होने से आप ही शंकर हो, मोक्षमार्ग की विधि के निर्माण कर्त्ता होने से आप ही विधाता हो, हे भगवन्। आप ही स्पष्ट रूप से पुरूषोत्तम विष्णु हो।

जैन उपासना का प्रमुख लक्ष्य आसन्न विपदाओं से मुक्ति और कालान्तर में मोक्ष प्राप्ति रहा है।

जैन धर्मानुयायियों का विश्वास है कि गुणग्रहण का भाव रखने तथा गुणों का चिन्तन/बखान करने से उन गुणों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की प्राप्ति होती है। इन स्तोत्रों के मूल में "वन्दे तद्‌गुणलब्धये" की भावना पूरे जोश के साथ विद्यमान है।

तीर्थंकर वीतरागी होते हैं अत: वे राग और द्वेष से प्रयोजन नहीं रखते लेकिन उनका स्मरण ही भय या दु:ख निवारण में समर्थ है,

त्वन्नाम मन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः।
सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति॥ (भक्तामर स्तोत्र-४६)

अर्थात् हे भगवन्! मनुष्य आपके नाम रूपी मंत्र का निरन्तर स्मरण करते हुए शीघ्र ही अपने आप बन्धन के भय से रहित हो जाते हैं।

जैनस्तोत्रों की रचना का प्रमुख हेतु स्वान्त: सुखाय एवं आत्मकल्याण रहा है।

रत्नत्रय की प्राप्ति की भावना से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र तथा इनके धारकों का गुणगान आवश्यक माना गया।

जैनस्तोत्रकारों के लिए 'जिन' शब्द अत्यधिक प्रिय रहा है। क्योंकि यह जितेन्द्रियता, जिन्होंने चार घातिया कर्मों को जीत लिया है ऐसे अर्हन्त भगवान् का सूचक रहा है।

जिनभक्ति में शक्ति की नहीं भावों की प्रधानता होती है। बड़े-बड़े योद्धा, बलवान व्यक्ति जो कार्य नहीं कर पाते वह जिनभक्ति पूर्ण कर देती है। आचार्य मानतुंग स्वामी कहते हैं कि :

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश,
कर्तुंस्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत:।
प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगी मृगेन्द्रं,
नाभ्येति किं निजशिशो: परिपालनाथ॥५॥

अर्थात् आपकी भक्ति के वशीभूत शक्ति रहित भी मैं स्तुति करने के लिए प्रवृत्त हुआ हूँ। हिरणी प्रीति से अपनी शक्ति को बिना विचारे अपने बच्चे की रक्षा के लिए क्या सिंह के सामने नहीं आती है अर्थात् अवश्य आती है।

भक्ति का रस शान्त माना गया है। जैन उपासना पद्धति भी शान्त भावों से की जाती है। जिसमें मन, वचन, काय की एकता अर्थात् मानसिक, वाचनिक एवं कायिक शान्ति को प्रमुखता दी जाती है ताकि अन्तिम उद्देश्य कार्य की शान्ति(सिद्धि)संभव हो सके। भक्ति में यदि कहीं सांसारिक दु:खों का वर्णन भी किया गया है तो उसका लक्ष्य यह नहीं है कि व्यक्ति दु:खी हों बल्कि लक्ष्य यह है कि व्यक्ति दु:खों से मुक्ति का उपाय सोचे, उपाय करे और दु:खों से मुक्त हो। संसार के प्रति अरूचि उत्पन्न कर वैराग भाव जगाना ही इष्ट रहा है।

इस तरह जैन उपासना का प्रथम लक्ष्य सांसारिक सुख एवं अंतिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति है। इस हेतु भक्त भगवान् का दर्शन, वंदन,पूजन,शास्त्र एवं गुरुओं की यथाविधि भक्ति, आहार आदि दान, एकाशन, उपवास, ध्यान, सामायिक,तीर्थयात्रा, जप-तप-त्याग आदि सद्प्रवृत्तियों में प्रवृत्त होकर अपने जीवन को सफल बनाता है। जो कुदेव, कुशास्त्र एवं कुगुरुओं की उपासना एवं भक्ति में अपना चित्त लगाता है वह निश्चित ही अपना संसार बढ़ाता है। अत: हमें उपासना के क्षेत्र में इसप्रकार की प्रवृत्ति से बचना चाहिए।

आज हमारे सामने निमित्तभूत जिनबिम्ब हैं, जिनेश्वर के लघुनंदन स्वरूप दिगम्बर मुनिराज गुरु के रूप में विद्यमान हैं, वीतराग प्रणीत जिनशास्त्र भी विद्यमान हैं और अनुभव जो आत्मा से किया जाये तथा हित की कसौटी पर कसकर किया जाये सो वह भी है। अत: क्यों न हम उपासना करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखें कि हम जो करें अच्छे के लिये करें और जो हो वह अच्छे के लिये हो। इसी में प्रत्येक जैन धर्मानुयायी और जैनत्व का भविष्य सुरक्षित है।

जैनं जयतु शासनम्।

एल-६५, इंदिरानगर, बुरहानपुर (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधु की नहीं, अपनी चिन्ता करो

मुनि श्री सुधासागर जी

साधु की चिन्ता मत करो कि इनका चातुर्मास किस तरह से अच्छा बनाना है, बल्कि अपनी चिन्ता करो कि साधु के सान्निध्य से हमें अपने जीवन को कैसे बदलना है। साढ़े तीन महीने तक निरन्तर श्रमणसंस्कृति के उन्नायक और वीतरागता के साक्षात् स्वरूप संतों का एक जगह नित्य संत समागम का अपूर्व अवसर मिलने के पश्चात् भी यदि 'जैनत्व' के पक्षधर और नगर के श्रद्धालु नर-नारी जाग नहीं सके, तो यह उन्हीं का दुर्भाग्य है। जो जागेगा, वही पाएगा, यह शाश्वत सत्य है। जो संसार की चिन्ता छोड़ अपनी आत्मा का पुजारी बनने की मंजिल पर चल पड़ा, फिर उसका कल्याण निश्चित है।

किसी नगर में साधु का चातुर्मास होने पर साधु का दुर्भाग्य जागता है, किन्तु श्रावकों (भक्त) का उससे सौभाग्य प्रकट होता है। दिगम्बर जैन साधुओं को जिनवाणी माता का यह आदेश है कि वह इस पंचमकाल में किसी जैन मंदिर में जाकर चातुर्मास करे, जिससे श्रावकों की बिगड़ती दृष्टि और पथभ्रष्ट होती राह को सही दिशा देकर उनको अपनी दशा सुधारने का अवसर दिया जा सके। माँ जिनवाणी उपदेश नहीं, बल्कि आदेश देती है और उसका पालन करना प्रत्येक साधु संत का कर्त्तव्य है। उसी आदेश की परम्परा से पूरे देश में जैन साधु-संत इंसानों की बस्ती में जिनेन्द्र प्रभु की भक्ति का गुणगान करने के लिए चातुर्मास पर आते हैं।

यही कारण है कि डगर-डगर और नगर से लेकर ढाणी-ढाणी तक पैदल निर्भय होकर घूमने वाले जैन साधु-संत को चातुर्मास काल के लिए साढ़े तीन महीने तक एक स्थान पर ही गुजारने पड़ते हैं और यही उनका दुर्भाग्य बनता है, परन्तु श्रावकों के लिए साधु का चातुर्मास काल सौभाग्य का प्रतीक बनता है। वर्षाकाल में जीव-जन्तुओं की बहुत अधिक उत्पत्ति होती है, जिनके प्रति दया, करुणा और अहिंसा की भावना को दृष्टि में रखते हुए ही साधु-संत वर्ष में एक बार वर्षाकाल में चातुर्मास करते हैं। चातुर्मास में यह न सोचें कि महाराज का चातुर्मास अच्छा बनाना है बल्कि त्याग, तपस्या और अहिंसा भावना में हम कितने आगे बढ़ पाएँगे, इस पर सोचना है।

कुएँ के जल में कोई विकल्प नहीं है, परन्तु वह जैसे-जैसे घट में जाएगा उसीतरह उसकी नियति बनेगी। मंगलकलश में गया तो वह पवित्र जल कहलाएगा, गटर में गया तो दूषित बनकर घृणा को पाएगा। इसीतरह संत समागम धर्म की गंगा समान है, जो जितना और जैसा हासिल करना चाहेगा, उसे वैसा ही मिलेगा। घर आई गंगा के बाद भी अपने घट को भरना है या नहीं, यह स्वयं को ही तय करना पड़ेगा। गंगा के घाटनुमा संतसमागम में आने पर आत्मा के कल्याण का मार्ग मिलेगा, यह निश्चित है, परन्तु यह अपनी-अपनी प्रवृति और प्रकृति पर निर्भर है कि उन्हें कितना पाना है, किधर चलना है। जो धर्म की गंगा में डूब गया, उसका मोक्षमार्ग असंभव नहीं है ।

श्रमणसंस्कृति के मार्ग पर चलने वाले आज भी काँटों में चलकर आनंद को पा रहे हैं। श्रमणसंस्कृति की पवित्रता, आदर्शरूपता आज भी संसार को सुवासित कर रही है। जैनसिद्धांत इस पंचमकाल में भी अपनी दृढ़ता पर कायम है। जैनसिद्धांत भौतिकता की अंधी दौड़ के पीछे नहीं है। न यह युग के अनुसार परिवर्तित होता है, बल्कि काल को जैनदर्शन के अनुसार चलना पड़ता है।

इसका साक्षात् प्रतीक व ज्वलन्त प्रमाण वे दिगम्बर साधु हैं, जो श्रमणसंस्कृति का ध्वज लिए और कुन्दकुन्द की परम्परा का जयघोष करते हुए इस भारतभूमि पर आज भी महावीर की वीतरागमुद्रा में पैदल घूम रहे हैं। दिगम्बरमुनिव्रतधारण करना कोई सहज नहीं है, परन्तु भारत की पावन भूमि का यह अहो भाग्य है कि श्रमणसंस्कृति की पवित्र परम्परा निरन्तर बढ़ रही है और यह श्रमणसंस्कृति न कभी झुक पाएगी, न कभी मिट पाएगी। संकट व विपत्तियाँ आने के बाद भी मुनिधर्म सिंह के समान आज भी महावीर की ध्वजा लहरा रहा है। यह ध्यान रहे कि मुनि का मार्ग साधना का है और गृहस्थ का उपासना का, अत: साधना के मार्ग पर बढ़ रहे साधु-संतों के चातुर्मास से अपना जीवन सुधारें। अपनी चिन्ता करें कि मैं कहाँ हूँ ?

'अमृतवाणी' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रिवर्णाचारों और संहिता ग्रन्थों का इतिहास

पं. मिलापचन्द्र कटारिया

दिगम्बर जैनधर्म में इसप्रकार के साहित्य में बहुतेरे क्रियाकांड वैदिकधर्म के घुस आये हैं। यह बात श्री पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार के त्रिवर्णाचारों पर लिखे हुए परीक्षा लेखों से भी खूब स्पष्ट हो चुकी है। ऐसे ग्रन्थों का निर्माण दि. जैनधर्म में सबसे प्रथम कब से शुरू हुआ और किनने किया? इस पर जब हम विचार करते हैं तो हमारी दृष्टि विक्रम की १४वीं सदी में होनेवाले गोविन्दभट्ट और उनके वंशजों पर जाती है। गोविंदभट्ट स्वयं पहिले वत्सगोत्री वैदिक ब्राह्मण था, समन्तभद्र के देवागमस्तोत्र के प्रभाव से वह जैन हो गया था। उसका पुत्र हस्तिमल्ल हुआ जिसने संस्कृत विक्रान्त कौरव आदि जैन नाटकों की रचना की है। इन्होंने ही संस्कृत में एक प्रतिष्ठाग्रंथ भी बनाया है, जिसकी प्रशस्ति जैन सिद्धांत भास्कर भाग ५, किरण १ में प्रकाशित हुई है। हस्तिमल्ल का समय विक्रम की १४वीं सदी का पूर्वार्द्ध निश्चित है। ये गृहस्थी थे। इन्हीं के समय में इन्द्रनंदि हुए हैं, जिन्होंने इंद्रनंदि संहिता नाम का एक ग्रन्थ रचा है। इस संहिता का परिचय करीब २५ वर्ष पहिले जैनबोधक, वर्ष ५१ ,अंक १०-११ में निकला था। उसके अनुसार यह संहिता ११ परिच्छेदों में कोई डेढ़ हजार श्लोक प्रमाण है। हमारे देखने में इसकी एक अधूरी प्रति आई है, जिसमें पूरे ७ परिच्छेद भी नहीं थे। इसी अधूरी प्रति के आधार पर प्रस्तुत लेख लिखा जा रहा है। इस संहिता में शौचाचार, आचमन, तिलकविधि, स्पृश्यास्पृश्यव्यवस्था, जातिनिर्णय, शूद्रों के भेदोपभेद, वर्णसंकर संतानसंज्ञा, सूतकपातक, कुछ दायभाग,गर्भाधानादि षोडश संस्कार, हवन, संध्या, गोत्रोत्पत्ति, मृत्युभोज, गोदान, पिंडदान और तर्पण आदि कई विषयों का वर्णन है। इनमें से कितना ही कथन साफतौर पर वैदिकधर्म से लिया गया प्रतीत होता है।

इस संहिता में आशाधर कृत 'सिद्ध भक्ति पाठ' पाया जाता है और इसी संहिता के तीसरे परिच्छेद के उपांत में 'न्यायोपात्तधनो यजन् गुणगुरुन्....' यह पद्य भी पाया जाता है जो आशाधर के सागारधर्मामृत का है। इससे इस संहिता के कर्ता इंद्रनंदि का समय आशाधर के बाद का सिद्ध होता है। इस संहिता के तीसरे परिच्छेद में गोत्रोत्पत्ति का कथन करते हुए ऐसा लिखा है :

पुष्पदंतउमास्वातिरैन्द्रनंदीति विश्रुताः ।
वसुनंदिस्तथा हस्तिमल्लाख्यो वीरसेनकः ॥

इस श्लोक में प्रयुक्त हस्तिमल्ल के उल्लेख से हस्तिमल्ल के बाद या हस्तिमल्ल के समय में इन्द्रनंदि हुए, ऐसा कहा जा सकता है। और ये दोनों आशाधर के बाद हुए यह भी प्रकट है। आशाधर का आखिरी समय विक्रम सं. तेरह सौ करीब है। विक्रम सं. १३७६ में निर्मापित अर्यपार्य के प्रतिष्ठापाठ में इंद्रनंदि व हस्तिमल्ल का उल्लेख हुआ है, अत: इनका समय १४ वीं शताब्दि का प्रथम-द्वितीय चरण सिद्ध होता है। यह समय आशाधर के कुछ ही बाद पड़ता है।

इंद्रनंदि ने उक्त संहिता के तीसरे परिच्छेद में भरद्वाज, आत्रेय, वशिष्ट और कण्व आदि नाम गोत्रप्रवर्तकों के बताये हैं। ये नाम वैदिक ऋषियों के हैं। इससे मालूम होता है कि इंद्रनंदि भी पहिले कोई शायद वैदिक ब्राह्मण ही हों और गोविंदभट्ट की तरह ये भी फिर जैन हुए हों। कुछ भी हो, हस्तिमल्ल के साथ इनका कोई संपर्क अवश्य रहा है। इंद्रनंदि यह नाम इनका दीक्षा-नाम जान पड़ता है। पूर्व में वैदिक ब्राह्मण होने के कारण ही इन्होंने संहिता में कितना ही विषय ब्राह्मणधर्म का भर दिया है। संभव है इसकी रचना में हस्तिमल्ल का भी हाथ रहा हो।

क्रियाकांडी साहित्य के दो अंग हैं । एक प्रतिष्ठा ग्रंथ और दूसरा त्रिवर्णाचार ग्रंथ । ऐसा लगता है कि दिगम्बर जैनधर्म में प्रतिष्ठा ग्रन्थों के निर्माण का आधार प्राय: आशाधर का प्रतिष्ठा पाठ रहा है और त्रिवर्णाचार ग्रन्थों के निर्माण का आधार इंद्रनंदि संहिता रही है। इस संहिता में त्रिवर्णाचार और प्रतिष्ठा दोनों ही विषयों का प्रतिपादन किया है।

विक्रम सं. १३७६ में होने वाले अर्यपार्य ने एकसंधि का भी उल्लेख किया है । अत: एकसंधि भी इंद्रनंदि के समय में या इनसे कुछ ही बाद हुए जान पड़ते हैं। इंद्रनंदि संहिता का सबसे प्रथम अनुसरण इन्होंने ही किया है। तदुपरांत अर्यपार्य के द्वारा आशाधर, इंद्रनंदि, हस्तिमल्ल और एकसंधि के अनुसार प्रतिष्ठा ग्रन्थ रचा गया है। ये अर्यपार्य भी गोविंदभट्ट के ही वंश के हैं , ऐसा ये खुद लिखते हैं।

पूजासार नामके ग्रंथ में भी जिसके कर्ता का पता नहीं है, इंद्रनंदि संहिता का कितना ही अंश ज्यों का त्यों भरा पड़ा है। यह ग्रन्थ अनुमानत: १५वीं सदी का हो सकता है।

विद्यानुवाद नाम के ग्रन्थ में भी जिसके संग्रहकर्ता कोई मतिसागर नाम के विद्वान् हुये हैं, कितना ही अंश इंद्रनंदि संहिता का पाया जाता है। उसमें एक जगह हस्तिमल्ल के नाम से भी गणधरवलय मंत्र का समावेश किया है। उसी में पूजासार का भी उल्लेख हुआ है। वसुनंदि प्रतिष्ठा पाठ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की उत्थानिका में जिन ग्रन्थों के आधार पर ग्रंथ बनाने की प्रतिज्ञा की है उनमें विद्यानुवाद का भी नाम है। वह विद्यानुवाद संभवत: यही हो सकता है।

भावशर्मा ने अभिषेक पाठ की टीका विक्रम सं. १५६० में बनाई। ऐसा राजस्थानग्रंथसूची, द्वितीय भाग के पृष्ठ १४ में लिखा है। इस टीका में भावशर्मा ने वसुनंदिप्रतिष्ठापाठ का उल्लेख किया है और आमेर शास्त्र भंडार की सूची के पृष्ठ १९३ में वसुनंदिप्रतिष्ठापाठ का लिपिकाल सं. १५१७ दिया है। यह लिपिकाल यदि सही हो, तो इस वसुनंदि का समय भी अनुमानत: १५वीं सदी माना जा सकता है। वसुनंदि प्रतिष्ठापाठ में कितने ही पद्य आशाधर प्रतिष्ठापाठ के पाये जाते हैं, इससे वह आशाधर के बाद का तो स्पष्ट ही है।

इसतरह पूजासार, विद्यानुवाद और वसुनंदिप्रतिष्ठापाठ इन तीनों का समय करीब-करीब आस-पास का ही जान पड़ता है।

वामदेव ने भी कोई प्रतिष्ठा ग्रंथ लिखा दिखता है। अपने इस प्रतिष्ठा पाठ का उल्लेख वामदेव ने अभिषेक पाठ की टीका में किया है। (मुद्रित अभिषेक पाठ संग्रह)। वामदेव का समय अर्यपार्य के आस-पास का, १४वीं शताब्दी है।

कुमुदचंद्र कृत 'प्रतिष्ठाकल्पटिप्पण' नामक ग्रन्थ भी सुना जाता है, जिसके कुछ उद्धरण हमारे देखने में आये, उससे ज्ञात होता है कि वह इंद्रनंदि संहिता की नकलमात्र है।

ब्रह्मसूरि ने प्रतिष्ठाग्रंथ ही नहीं त्रिवर्णाचार ग्रंथ भी लिखा है। सोमसेन के त्रिवर्णाचार में कितना ही वर्णन ब्रह्मसूरि के उल्लेख से किया गया है। वास्तव में वह वर्णन ज्यों का त्यों इन्द्रनन्दि संहिता में पाया जाता है। इससे जान पड़ता है ब्रह्मसूरि ने इन्द्रनन्दिसंहिता से लिया और सोमसेन ने ब्रह्मसूरि के त्रिवर्णाचार से। सोमसेन का समय विक्रम सं. १६६० निश्चित है।

अलावा इसके एक प्रतिष्ठातिलक नाम का ग्रंथ नेमिचन्द्र कृत है जो छप भी चुका है। उसके देखने से मालूम होता है कि वह अर्थश: अधिकांश में हूबहू आशाधर प्रतिष्ठा पाठ की नकल है, भले ही उसके कर्ता ने कहीं आशाधर का उल्लेख नहीं किया है। इसकी प्रशस्ति से पाया जाता है कि ये नेमिचन्द्र भी हस्तिमल्ल के ही वंश में हुए हैं और रिश्ते में उक्त ब्रह्मसूरि के भानजे लगते हैं। ये गृहस्थ थे। इन्होंने जो प्रशस्ति में अपनी वंशावली दी है उसकी गणनानुसार इनका समय १६वीं शताब्दी हो सकता है। और यही समय ब्रह्मसूरि का भी समझना चाहिये।

तदुपरांत अकलंक प्रतिष्ठा पाठ का नंबर आता है। इसका निर्माण ब्रह्मसूरि के बाद में हुआ है।

एक जिनसेन त्रिवर्णाचार भी है वह सोमसेन त्रिवर्णाचार के बाद उसकी छाया लेकर बना है।

इसतरह त्रिवर्णाचारों और प्रतिष्ठापाठों के रचे जाने का यह इतिहास है। इससे जाना जा सकता है कि इन त्रिवर्णाचारों की परम्परा जहाँ से शुरू होती है वे पहिले वैदिक ब्राह्मण थे बाद में जैन होकर उन्होंने क्रियाकांडी साहित्य की रचना की। पूर्वसंस्कार और परिस्थितिवश उनको उसमें कितना ही कथन ब्राह्मणधर्म जैसा करना पड़ा है। यह परंपरा आज से कोई सात सौ वर्ष पहिले से चालू हुई है। और प्रतिष्ठा ग्रंथों की परंपरा भी प्राय: आशाधर को आधार बनाकर यहीं से शुरू हुई है। इसप्रकार के साहित्य की परम्परा का उद्गम आशाधर और उसके समय के आस-पास होने वाले हस्तिमल्ल, इंद्रनन्दि, एकसंधि आदि से हुआ जान पड़ता है।

यहाँ खास ध्यान में रखने की बात यह है कि हमारे यहाँ इन्द्रनन्दि, वसुनन्दि, माघनन्दि, नेमिचन्द, अकलंक, जिनसेन आदि नाम वाले प्राचीन और प्रामाणिक आचार्य हुये हैं। वैसे ही नाम वाले अर्वाचीन ग्रंथकार भी हुये हैं। अत: नामसाम्य के चक्कर में पड़कर उनको एक ही नहीं समझ लेना चाहिये। कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि एक ही नाम और एक ही समय में होकर भी व्यक्ति भिन्न-भिन्न रहे हैं, जैसे आदिपुराण और हरिवंशपुराण के कर्ता जिनसेन। इसतरह से अन्य भी ग्रंथकार हो सकते हैं।

जीवराज जैन ग्रंथमाला सोलापुर से प्रकाशित 'भट्टारक सम्प्रदाय' पुस्तक के पृ. २५२ पर पट्टावली का लेख छपा है जिसमें लिखा है कि, 'पद्मसेन के शिष्य नरेन्द्रसेन ने कुछ विद्या के गर्व से उत्सूत्रप्ररूपण करने के कारण आशाधर को अपने गच्छ से निकाल दिया तो वह कदाग्रही श्रेणीगच्छ में चला गया'। वह लेख यों है, '**तदन्वये श्रीमत् वाटवर्गट प्रभाव श्री पद्मसेनदेवानां तस्य शिष्य श्री नरेन्द्रसेनदेवैः किंचिद्विद्यागर्वत असूत्रप्ररूपणादाशाधरः स्वगच्छान्निस्सारितः कदाग्रहग्रस्तं श्रेणिगच्छमशिश्रियत्।**'

आशाधर कृत प्रतिष्ठा पाठ में कई ऐसे देवी देवताओं के नाम, उनके विचित्र रूप व उनकी आराधना करने का कथन किया है जिनके नाम तक करणानुयोगी ग्रन्थों में नहीं मिलते हैं। वैसा वर्णन साफ तौर पर कपोल कल्पित नजर आता है। सम्भव है आशाधर के ऐसे ही कथनों को लेकर नरेन्द्रसेन ने आशाधर का बहिष्कार किया हो। इति।

'जैन निबन्ध रत्नावली' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थगुणस्थान में शुद्धोपयोग नहीं होता

पं. जवाहरलाल शास्त्री

शंकाकार : श्री महावीर प्रसाद अजमेरा, जोधपुर

शंका : चतुर्थ गुणस्थान में शुद्धोपयोग नहीं होता। इस विषय में आचार्यों के प्रमाण पूर्वक सिद्ध कीजिए ?

समाधान : नीचे सिद्ध किया जाता है कि शुद्धोपयोग सातवें गुणस्थान से पूर्व नहीं होता, चौथे गुणस्थान में शुद्धोपयोग नहीं होता :

१. **अप्रमत्तादि क्षीणकषायन्तगुणस्थानषट्के तार-तम्येनशुद्धोपयोगे:**। (प्र.सा.९, ता.वृ.२०)

अर्थ : सातवें से १२वें गुणस्थान तक तरतमता से शुद्धोपयोग है।

२. यही बात प्रवचनसार ता.वृ. १८१ में लिखी है।

३. यही बात वृहद् द्रव्यसंग्रह ३४ में लिखी है।

४. यदि इसमें (ऊपर) तारतम्येन शब्द न होता तब तो मान सकते थे कि चौथे गुणस्थान में शुद्धोपयोग है। तारतम्य का अर्थ यही है कि सातवें से प्रारंभ होकर १२वें गुणस्थान तक आगे-आगे विशुद्ध होते हुए अन्त में (१२ वें में) शुद्धोपयोग की पराकाष्ठा हो जाती है।

अत: चौथे गुणस्थान में शुद्धोपयोग का अंश भी संभव नहीं है। प्रत्युत छठे गुणस्थानवर्ती मुनि के शुभोपयोग की समानता भी चतुर्थ गुणस्थानवर्ती के नहीं हो सकती है। (प्र.नि., पृष्ठ ५९ पू. ज्ञानमती माताजी)

५. चतुर्थ गुणस्थान में वस्तुत: शुद्धोपयोग नहीं होता। (पं.जगन्मोहनलाल जी, अध्यात्म अमृत कलश पृ.३७४, मुमुक्षु मण्डल प्रकाशन)

६. चतुर्थ गुणस्थान यानी अविरत सम्यक्त्व में शुद्धोपयोग होने का प्रश्न ही नहीं उठता। (पं. रतनचंद मुख्तार व्यक्तित्व, पृ. ८५१ तथा ८५२ तथा ८७१)

७. वीतरागचारित्रं शुद्धोपयोग, स्वरूप/वीतराग चारित्र को यहाँ शुद्धोपयोग कहा। (प्रवचसार ११ टीका)

८. देखें जैनसन्देश दि. ६.५.५८ पृष्ठ ४ ब्र. बाबू रतनचन्द मुख्तार, सहारनपुर तथा मुख्तार ग्रन्थ पृ. १२३

९. चौथे गुणस्थान में शुद्धोपयोग नहीं होता। (जैन गजट २३.११.६७, पृ. ८)

१०. इसी प्रकार देखें जैन गजट १५.२.७३ पृ. ७ तथा ४.१.६८ पृ.७।

११. चतुर्थ गुणस्थान में स्वरूपाचरण चारित्र मानने वाले को द्वादशांग पर श्रद्धा नहीं है। (देखें-मुख्तार ग्रन्थ पृ.८३३)

१२. शुद्धोपयोग सर्व परित्याग, परमोपेक्षा संयम, वीतराग चारित्र, ये शुद्धोपयोग के पर्यायवाची नाम हैं। यथा- सर्वपरित्याग: परमोपेक्षासंयमो,वीतराग चारित्रं शुद्धोपयोग इति यावदेकार्थ: (प्रवचनसार पृ. ५५२ गा. २३०, शान्तिवीर दि. जैन संस्थान, महावीर जी)

१३. शुद्धात्मानुभूतिलक्षण वीतराग चारित्र यानी शुद्धात्मानुभूति तो वीतराग चारित्र का लक्षण है। वही पृ. १९२ शुद्धोपयोग लक्षणो भावमोक्ष: (वही पृ. १९९ तथा २०० गा. ८४ मोहेण व... की ता. वृ.) शुद्धोपयोग लक्षण को रखनेवाला भावमोक्ष है।

१४. परमात्म प्रकाश में तो कहा है कि गृहस्थों के शुद्धोपयोग रूप परम धर्म है ही नहीं- गृहस्थानां . . . शुद्धोपयोग परमधर्मस्य अवकाशोनास्ति। (२/१११)

१५. यों है सकल संयम चरित्र, सुनिये स्वरूपाचरण अब (छहढाला)। इसप्रकार सकलसंयम चारित्र कहा। अब इसके बाद में स्वरूपाचरण (शुद्धोपयोग) सुनिए।

इसी पद्यांश से स्पष्ट है कि सकलसंयम के बाद ही स्वरूपाचरण (शुद्धोपयोग) होता है अन्यथा वे सकल-संयम के पूर्व ही इसे कह देते।

इन पन्द्रह प्रमाणों से तथा अन्य भी प्रवचनसार टीका में लिखित प्रमाणों से यह कांच के माफिक स्पष्ट सिद्ध है कि अव्रती सम्यग्दृष्टि को शुद्धोपयोग नहीं होता। यदि यह कहा जाए कि धवला १३ में तो कहा कि धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान में विषयकृत भेद नहीं कहा, मात्र कालकृत भेद कहा, अत: धर्मध्यान में भी शुक्लध्यानवत् शुद्धोपयोग कहो ना ?

तो इसका उत्तर यह है कि यदि विषय-साम्य से दोनों ध्यानों में साम्य (समानता) मानते हो तो फिर धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान के फल भी एक-समान मानने का अनुचित प्रसंग आएगा। (२) समानकाल (एक-समय परिमाण) में तुल्य गुणश्रेणि-निर्जरा मानने का अनुचित प्रसंग आएगा। (३) मिथ्यात्वी के द्वारा भी, कदाचित् सरागसंवेदन-आत्मसंवेदन होने से, एक ही आत्मा विषयीकृत होने से अन्य भी अनेक अनुचित प्रसंग आवेंगे। (४) शुद्ध: रागादिरहित: उपयोग: शुद्धोपयोग: यानी वीतराग उपयोग। वह सराग परिणति में कैसे? सराग-सम्यक्त्वी में कैसे ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौथे गुणस्थान में जब चारित्र ही नहीं है (गो. जी. १२) तथा वहां संयम नहीं है, इसीलिए वह असंयत कहलाता है (गो. जी. २९)। चारित्रगुण की अपेक्षा वहाँ औदयिक भाव है (ध. ५/२०१) । ऐसे चौथे गुणस्थानवर्ती गृहस्थी को शुद्धोपयोग यानी चारित्रगुण की निर्मल पर्याय मानना हास्यास्पद है।

समयसार तात्पर्यवृत्ति में जो कहा है कि 'तत्रं च यदा कालादि लब्धिवशेन भव्यत्व शक्तेर्व्यक्तिर्भवति तदायं जीवः। सहज शुद्ध पारिणामिक भाव लक्षण निजपरमात्म द्रव्य सम्यक् श्रद्धानज्ञानानुचरण पर्यायरूपेण परिणमति। तच्चपरिणमनं आगमभाषयौपशमिक क्षायोपशमिक क्षायिकं भावत्रयं भण्यते। अध्यात्म भाषया पुनः शुद्धात्माभिमुख-परिणामः शुद्धोपयोगः इत्यादि पर्यायसंज्ञां लभते। . . . (समयसारः : "दिट्ठी सयंपि". . . गाथा ३४३ की ता. वृ. पृ. ३०३-३०५, अजमेर प्रकाशन)

पूज्य आ. ज्ञानसागरीय अर्थ व विशेषार्थ

टीकाकार ने यहाँ बतलाया है कि काल आदि लब्धि के बल से इस जीव की भव्यत्व-शक्ति की अभिव्यक्ति होती है, तभी यह जीव अपने परमात्व द्रव्य का समीचीन श्रद्धान, ज्ञान, अनुष्ठान करने रूप में परिणमन करता है। उस परिणमन को ही आगम की भाषा में औपशमिक, क्षायिक व क्षायोपशमिक भाव नाम से कहा जाता है व अध्यात्म-भाषा में वही शुद्धात्मा के अभिमुख परिणामस्वरूप शुद्धोपयोग नाम पाता है। टीकाकार के उल्लेख से चतुर्थ गुणस्थान में ही शुद्धोपयोग हो जाना सिद्ध होता है; क्योंकि वहाँ दर्शनमोह का क्षय क्षयोपशम या उपशम हो जाता है। तो फिर क्या चतुर्थ गुणस्थान में ही शुद्धोपयोग मान लेना चाहिये, क्योंकि तज्जन्य औपशमिकादिक भाव भी उस गुणस्थान में होते ही हैं? इसका उत्तर यह है कि यहाँ इस अध्यात्म-शास्त्र में दर्शन-मोह व चारित्र मोह को पृथक्-पृथक् न लेकर मोह नाम भूल का लिया गया है। फिर वह भूल चाहे दर्शन संबंधी हो, या चारित्र संबंधी हो, भूल तो भूल ही है। इस प्रकार वह भूल जिसके उपयोग में न हो वही सम्यग्दृष्टि, सम्यग्ज्ञानी यहाँ पर लिया गया है और जैसा स्वयं टीकाकार, श्री जयसेनाचार्य ने भी अनेक स्थानों पर बतलाया है कि यहाँ पर पंचमगुणस्थान से ऊपरवाले को ही सम्यग्दृष्टि शब्द से लिया गया है अर्थात् चारित्र-सहित सम्यग्दृष्टि को ही यहाँ पर सम्यग्दृष्टि माना गया है। अथवा वीतराग सम्यग्दृष्टि को ही यहाँ सम्यग्दृष्टि लिया है एवं उसका औपशमिकादिकभाव शुद्धोपयोग है, अर्थात् ग्यारहवें गुणस्थान वाले का औपशमिकभाव और बारहवें गुणस्थानवाले का क्षायिक भाव। ग्यारहवें गुणस्थान से नीचे वाले मुनि का क्षयोपशमिक भाव शुद्धोपयोग है, यह कहना भी ठीक ही है। वह शुद्धोपयोग भी दो प्रकार का होता है, एक तो शुद्ध धर्मध्यानात्मक, जो कि सप्तमगुणस्थानवर्ती मुनि को होता है और दूसरा शुक्लध्यानात्मक शुद्धोपयोग, जो कि आठवें आदि गुणस्थानों में होता है।

दूसरी बात यह है कि उक्त प्रासंगिक टीका तात्पर्य वृत्ति में ही आगे लिखा है कि 'शुद्धोपारिणामिक भाव विषये याभावना तद्रूप यदौपशमिकादि भावत्रयं तत् समस्तरागादि रहितत्वेन शुद्धोपादानकारणत्वात् मोक्षकारणं भवति।'

अर्थ : शुद्ध पारिणामिक भाव के विषय में जो भावना (यानी शुद्धोपयोग) है, उस रूप जो औपशमिकादिक तीन भाव हैं, वे रागादि समस्त विकारों से रहित होने से, शुद्ध उपादान के कारण होने से मोक्ष के कारण हैं।

नोट : यहाँ तो शुद्धोपयोग, औपशमिकादि तीन भाव, रागादि सम्पूर्ण विभावों से रहित भाव ऐसा अत्यन्त स्पष्ट कहा है। यानी यहाँ तो कांच के माफिक यह स्पष्ट करा दिया है कि शुद्धोपयोग निश्चित ही रागादि सकल विकल्पों रहित अर्थात् वीतराग है।

इसीतरह प्रकृत औपशमिक आदि भाव भी वीतराग परिणतिमय हैं। अतः यह प्रकरण यह सिद्ध नहीं करता कि चौथे गुणस्थान में शुद्धोपयोग होता है। परन्तु जहाँ वीतरागता प्रारंभ होती है वहाँ से होती है। अतः प्रकरण को अधूरा पढ़कर ही अर्थ लगाना उचित नहीं।

तीसरी बात यह है कि भव्य मिथ्यात्वी अन्तर्मुहूर्त में सातवाँ गुणस्थान प्राप्त कर सकता है। अतः उपर्युक्त प्रकरण वाला शुद्धोपयोग (धर्मध्यानात्मक शुद्धोपयोग) आज भी संभव है। अतः चौथे गुणस्थान में शुद्धोपयोग त्रिकाल भी नहीं होता, यह सिद्ध है।

यदि यह कहा जाय कि अनन्तानुबन्धी के उदयाभाव से होनेवाली शुद्धि को शुद्धोपयोग कैसे नहीं कहा जा सकता तो इस विषय में हमारा निवेदन है कि ऐसा माना जाता है कि अनन्तानुबन्धी विसंयोजक सम्यक्दृष्टि के मिथ्यात्व में आने पर उस मिथ्यादृष्टि के असंख्यात् समयों तक अनन्तानुबंधी का उदय नहीं रहता। इसीतरह सभी सम्यग् मिथ्यादृष्टियों के भी अनंतानुबंधी का उदय नहीं होता। ऐसी स्थिति में उक्त मिथ्यादृष्टि तथा सम्यग् मिथ्यादृष्टि जीवों के भी शुद्धोपयोग या स्वरूपाचरण मानने का अनुचित प्रसंग आएगा, जो कि आपको भी इष्ट नहीं है। इस प्रकार चौथे गुणस्थान में शुद्धोपयोग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानना उचित नहीं है।

प्रश्न : क्या आप ऐसा उदाहरण बता सकते हैं कि विषय एक ही हो तब भी भिन्न-भिन्न भूमिका में नाम भिन्न-भिन्न हों। चौथे गुणस्थान में शुद्धोपयोग मानने में क्या बाधा है ?

उत्तर : दिगम्बर सम्प्रदाय में सवस्त्र अवस्था में शुद्धोपयोग नहीं माना है। १५ प्रमाण ऊपर दिए हुए हैं।

उदाहरण : जैसे मोनिका नाम की एक बालिका है। वह अविवाहित अवस्था में अपने माता-पिता के घर पर, माता-पिता के लिए कन्या है, बेटी है, पालिता है तथा लाड़प्यार से पोषित एवं पराया धन है। वह पिता के घर पर बेटी ही मानी जाती है। यहाँ पर मोनिका के भी हाव-भाव, बोल-चाल हंसी-मजाक, व्यवहार एक पुत्री-सदृश ही होते हैं। जबकि इसी मोनिका का विवाह होने पर ससुराल में यह बेटी नहीं,बल्कि बहू मानी जाती है तथा पति की सबसे बड़ी अहमियत, कामिनी मानी जाती है। वहाँ मोनिका के हाव भाव, बोलचाल, हंसी-मजाक,व्यवहार आदि बहू जैसे ही होते हैं। इसप्रकार जैसे यहाँ पर एक ही मोनिका भिन्न-भिन्न गृहों में भिन्न-भिन्न रूप बेटीपना तथा बहूपना को प्राप्त होती है। वह सतर्क, साधार तथा सटीक है। उसीप्रकार चाहे चौथे एवं सातवें में विषयभूत वस्तु एक ही होवे, परन्तु भिन्न-भिन्न भूमिका में संयम-घातक कषायों के सद्भाव व अभाव के कारण वे उपयोग क्रमशः शुभोपयोग तथा शुद्धोपयोग कहलाता है। मात्र अनन्तानुबंधी के अभाव से शुद्धोपयोग नहीं होता। **शुद्धोपयोग चारित्र-गुण की निर्मल पर्याय है, अतः वह अप्रमत्तसंयम के पहले नहीं हो सकती। अप्रमत्त संयत के जघन्य शुद्धोपयोग होता है, तथा पूर्ण या उत्कृष्ट शुद्धोपयोग ग्यारहवें बारहवें गुणस्थान में होता है।** चौथे गुणस्थान में मतिज्ञान द्वारा जो आत्मा विषय होती है, उसके फलस्वरूप जो आत्मा का ज्ञान होता है, वह ज्ञान है; चारित्र-गुण की निर्मल परिणतिरूप शुद्धोपयोग नहीं।

उपसंहार : चौथे गुणस्थान में शुद्धोपयोग कदापि नहीं होता, जो कि चारित्र-गुण की निर्मल परिणतिरूप है। चौथे में तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान तथा सम्यक्त्वाचरण चारित्र ही होते हैं, शुद्धोपयोग या स्वरूपाचरण चारित्र त्रिकाल असंभव है।

'जैन गजट', २९जुलाई १९९९ से साभार

पृथ्वी का घूमना वास्तुशास्त्र को निरर्थक सिद्ध करता है

डॉ. धन्नालाल जैन

वास्तु-शास्त्र आधुनिक विज्ञान की खोजों के परिप्रेक्ष्य में एक भ्रमित-शास्त्र सिद्ध होता है। वास्तु-शास्त्र के अनुसार निर्माण,दिशाओं को ध्यान में रखकर करना चाहिए पर, दिशाएं तो स्वयं काल्पनिक हैं। पूर्व, पश्चिम, उत्तर,दक्षिण चारों दिशाएं तथा अग्नि-कोण (पूर्व और दक्षिण दिशाओं का मध्य भाग), नैऋत्य-कोण (दक्षिण और पश्चिम दिशाओं का मध्य भाग), वायव्य-कोण (पश्चिम और उत्तर दिशाओं का मध्य भाग), ईशान-कोण (उत्तर और पूर्व दिशाओं का मध्य भाग),क्षितिज अक्षांश-देशांतर रेखाएं आदि का ब्रह्मांड में कहीं भी अस्तित्त्व नहीं है। पृथ्वी लगभग गोल है, गोल-आकृति पर किसी भी दिशा आदि का अस्तित्त्व संभव नहीं है। पृथ्वी अपनी धुरी पर घूम रही है, घूमते हुए पृथ्वी जब स्थिर सूर्य के समक्ष आती है तो दिनोदय (भ्रमणवश सूर्योदय कहा जाता है) होता है और दिनोदय की दिशा को पूर्व-दिशा मान लिया गया, ठीक इसीप्रकार पृथ्वी जब अपनी धुरी पर घूमते हुए सूर्य से विमुख हो जाती है तो अंधेरा छाने लगता है,जिसे दिनास्त (भ्रमणवश सूर्यास्त कहा जाता है) माना जाता है और उस दिशा को पश्चिम दिशा मान लिया गया। ये सब काल्पनिक हैं।

पृथ्वी घूम रही है अतः पृथ्वी पर निर्मित भवन आदि भी घूम रहे हैं। पृथ्वी एक मिली सेकंड (एक सेकंड का हजारवां भाग) में लगभग १४८ मीटर घूम जाती है अर्थात् एक सेकंड में १,४८,००० मीटर पृथ्वी अपने स्थान से अपनी ही धुरी पर आगे बढ़ जाती है। ऐसी स्थिति में पृथ्वी पर हुए निर्माण-कार्य भी घूम जाते हैं और लगभग १२ घंटे में पूर्व-दिशा (काल्पनिक) का निर्माण कार्य पश्चिम-दिशा (काल्पनिक)मुखी हो जाता है। जो वास्तु-शास्त्री कहते हैं कि निर्माण-कार्य इसी दिशा विशेष में होना चाहिए। वे यह बताएं कि जब पृथ्वी घूम रही है और एक मिली सेकंड में भी निर्माण कार्य दिशा विशेष में स्थिर नहीं है तो उस वास्तु-शास्त्र का क्या उपयोग है?

८६, तिलकपथ, इंदौर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गतांक से आगे

आचार्य समन्तभद्र और उनकी स्तुतिपरक रचनाएँ

प्राचार्य पं. निहालचन्द्र जैन

समन्तभद्र का समय : डॉ. के.बी. पाठक के अनुसार स्वामी समन्तभद्र ईसा की आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुए। जबकि जैनसमाज में उनका समय आमतौर पर दूसरी शताब्दी माना जाता है । पुरातत्त्व के कई विद्वानों ने इसका समर्थन भी किया है ।

स्वामी समन्तभद्र की स्तुति परक रचनाएं

अर्हद्भक्ति के लिए समन्तभद्र की स्तुतिपरक प्रमुख चार रचनाएं हैं, जिनमें जैन सिद्धांत का सार गुम्फित है ।

1. देवागम स्तोत्र 2. जिनस्तुतिशतकं 3. स्वयम्भू स्तोत्र और 4. युक्त्यनुशासन।

1. देवागम स्तोत्र : 'आप्त मीमांसा' के नाम से विख्यात आपका यह सबसे प्रधान ग्रन्थ है । देवागम शब्द से प्रारम्भ होने के कारण यह देवागम स्तोत्र कहलाया । जिस प्रकार-कल्याण मंदिर स्तोत्र या भक्तामर स्तोत्र हैं, जो इन शब्दों से ही शुरू होते हैं । इस स्तोत्र में अर्हन्तदेव का आगम व्यक्त हुआ है । इस स्तोत्र में श्लोकों की संख्या 114 है । इस ग्रन्थ पर भट्टाकलंकदेव ने अष्टशती के नाम से तथा श्री विद्यानन्दाचार्य ने अष्टसहस्री नाम से बड़ी टीका लिखी है । इतनी विशाल एवं समर्थ टीका-टिप्पणियों के बाद भी देवागम विद्वानों के लिए दुरूह और दुर्बोधसा बना हुआ है । निश्चित ही 114 श्लोकों के लघु ग्रन्थ रूपी कूप में सम्पूर्ण मतमतान्तरों के रहस्य रूपी समुद्र को भर दिया है। अत: गहरे अध्ययन, मनन और विस्तीर्ण हृदय की विशेष आवश्यकता है ।

2. जिन स्तुति शतकं : इस ग्रन्थ का मूल नाम स्तुति विद्या है । इसके आदि मंगल पद्य में 'स्तुतिविद्यां प्रसाधये' इस प्रतिज्ञा वास से इसका नाम 'स्तुति विद्या' प्रसिद्ध है । इसकी छह आरों और नववलयों वाली चित्र रचना पर से ग्रन्थ का नाम 'जिनस्तुति शतं' निकलता है । चूंकि शत और शतक एकार्थक हैं अत: यह 'जिनस्तुति शतकं ' भी कहा जाता है । जिसका बाद में संक्षिप्त रूप 'जिन शतक' हो गया। इसमें वृषभादि चौबीस जैन तीर्थंकरों की अलंकृत भाषा में बड़ी कलात्मक स्तुति की गई है । कहीं श्लोक के एक चरण को उलटकर रख देने से दूसरा चरण, कहीं पूर्वार्ध को उलटकर रख देने से उत्तरार्ध और कोई समूचे श्लोक को उलटकर रख देने से दूसरा अमला श्लोक बन जाता है । श्लोक नं. 10,83,88 और 95 में एक चरण उलटकर रख देने से दूसरा चरण बन जाता है । इसी प्रकार 57, 96 और 98 में पूर्वार्ध पलट देने से उत्तरार्ध बन जाता है- उदाहरण देखें-

रक्ष माक्षर वामेश शमी चारुरुचानुतः ।
भो विभोनशनाजोरु नम्रेन विजरामय ॥ ८६ ॥
यमराज विनम्रेन रुजोनाशन भो विभो ।
तनु चारु रुचामीश शमेवारक्ष माक्षर ॥ ८७ ॥

इस प्रकार अनेक प्रकार से शब्दों के अतिशय सम्पूर्ण स्तोत्र में समाहित हैं । शब्दालंकार और चित्रालंकार के अनेक भेद प्रभेदों से सम्पूर्ण कृति अलंकृत है। 'समस्तगुण गणोपेता, सर्वालंकार भूषितां' सचमुच यह ग्रन्थ अपूर्व काव्य कौशल, अदभुत व्याकरण-पाण्डित्य और अद्वितीय शब्दाधिपत्य को सूचित करता है । जो योगियों के लिए भी दुर्गम है । इस कृति को 'सदगुणाधार' यानी उत्तमगुणों की आधार भूमि बतलाते हुए 'सुपद्मिवनी' भी संज्ञित है । ग्रन्थ में सुन्दरता का सूचन पद-पद पर लक्षित है।

उद्देश्य : ग्रन्थ की रचना का उद्देश्य 'आगसां जये' यानी पापों को जीतना बतलाया है । जिनस्तुति से पाप कैसे जीते जाते हैं, यह रहस्य का विषय है । समस्त तीर्थंकर पाप विजेता, अज्ञान, मोह तथा काम-क्रोधादि पाप प्रवृत्ति/प्रकृतियों पर उन्होंने पूर्णत: विजय प्राप्त की है, अत: आपको हृदय मंदिर में प्रतिष्ठित करने से पापों के दृढ़ बन्धन उसी प्रकार ढीले पड़ जाते हैं, जिस प्रकार चन्दन के वृक्ष पर मोर आने से, उससे लिपटे हुए सांप ढीले पड़कर भय से भाग जाते हैं अथवा शुद्ध स्वरूप के सामने आते ही, अपनी भूली हुई निधि का स्मरण हो उठता है और उसकी प्राप्ति के लिए वह कटिबद्ध हो जाता है ।

भक्तियोग का यह माहात्म्य होता है कि जब प्रकाशित दीपक की उपासना करते हुए समर्पित मस्तक झुकता है तो वह स्वयं दीपक बनकर जगमगा उठता है । स्तुतिकर्ता, स्तुत्य के गुणों की अनुभूति करता हुआ उसमें अनुरागी होकर, उन आत्मीय गुणों को अपने में विकसित करने की शुद्ध भावना करता है । कर्मसिद्धांत से स्तुति के फल को स्पष्ट कर सकते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आस्रव विधि से द्रव्य रूप पुद्गल परमाणु आत्मा में प्रवेश करते हैं । यदि मन-वचन-काय की क्रियाएं शुभ हैं, तो शुभ कर्म और यदि अशुभ हैं, तो अशुभ कर्म होते हैं। शुभकर्म, पुण्य प्रकृति रूप और अशुभ कर्म, पाप प्रकृतिरूप होती है। शुभाशुभ भावों की तरतमता कषायादि परिणामों की तीव्रता या मन्दता के कारण, इन कर्म प्रकृतियों में उलटफेर या संक्रमण होता रहता है। वीतराग भगवान् की उपासना के समय, उनके पुण्य गुणों का स्मरण करने से शुभ भावों की उत्पत्ति होती है, जिससे पाप परिणति छूटती है और उसका स्थान पुण्य परिणति ले लेती है। अत: पुण्य प्रकृतियों का रस बढ़ता है और पाप प्रकृतियों का रस सूखने लगता है। अन्तरायकर्म, जो एक पृथक मूल पाप प्रकृति रूप है, हमारे दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्यरूप शक्ति-बल में विघ्न करता है, वह कमजोर पड़ जाता है, जिससे इष्ट कार्य में बाधा समाप्त होकर, बिगड़े कार्य भी सुधर जाते हैं, तथा हमारे लौकिक प्रयोजन अनायास ही सिद्ध हो जाते हैं । अत: स्तुति या वन्दनादिक धर्म कार्य, इष्ट फलदाता होते हैं। इसी अभिप्राय को तत्वार्थश्लोकवार्तिक में आचार्य ने कहा है-

नेष्टं विहन्तुं शुभ भाव-भग्न, रसप्रकर्षः प्रभुरन्तरायः।
तत्कामचारेण गुणानुरागान्नुत्यादिरिष्टार्थ कदाऽर्ह दादेः।

3. स्वयम्भूस्तोत्र : यह स्तोत्र स्वयम्भू शब्द से प्रारम्भ होता है । इसमें स्वयम्भू-पद को प्राप्त 24 तीर्थंकरों की स्तुति की गई है । स्वयम्भू का मतलब है जो अनन्तचतुष्टय रूप आत्म विकास को प्राप्त होकर मोक्षमार्ग प्रणेता बनकर उसे प्राप्त किया है । इसका दूसरा नाम 'समन्तभद्र स्तोत्र' भी पाया जाता है । स्वयम्भूस्तोत्र के अन्तिम पद में 'समन्तभद्र' पद प्रयुक्त हुआ है। अत: इसका अपर नाम भी प्रचलित है। यह समन्तभद्र की अपूर्व रचना है । इसके पदों को सूक्तार्थ, अमल, स्वल्प आदि विशेषण देखकर वे सूक्तरूप से ठीक अर्थ का प्रतिपादन करने वाले हैं, अल्पाक्षर हैं और प्रसाद-गुण-विशिष्ट हैं । इस ग्रन्थ में भक्ति, ज्ञान और कर्मयोग की त्रिवेणी बहाई है, जिसमें अवगाहन से सुख शान्ति का लाभ होता है ।

इसकी प्रभावोत्पादकता से अनुरक्त होकर मैंने दो वर्ष पूर्व अतुकान्त छंदों में हिन्दी पद्यानुवाद किया था, जिसका चन्द्रप्रभ जिनस्तवन का उदाहरण देखें :

चन्द्रकिरण सम, गौरवर्णमय इस जग के
तुम द्वितीय चन्द्र हो ।
गणधरादि ऋषियों के स्वामी, इन्द्रों द्वारा अर्चनीय हो।
दुष्कृत भाव दलन कर,
काषायिक बन्धन से उपरत,
चन्द्रकान्ति से परम मनोहर-अष्टम तीर्थंकर जिनस्वामी
चन्द्रप्रभु तुमको प्रणमामि ।। 36 ।।

इसी प्रकार शान्ति जिनस्तवन की एक झलक देखें :

प्रशस्त पंचकल्याणक की परम्परा से सहित महोदय,
रिपु जिससे भयभीत-सुदर्शन चक्र धरें वे ।
राजाओं के परिमण्डल पर विजय प्राप्त कर
चक्रवर्ती का महासुयश पद पाया ।
फिर समाधिचक्र से-दुर्जय सबल मोह कर्मों की,
सभी प्रकृतियां क्षार क्षार कर,
अरिहन्त परम पद पाया।

स्वामी समन्तभद्र ने अपने इस स्तोत्र में तीर्थंकर अर्हन्त के लिए, जिन विशेषण पदों का प्रयोग किया है, उनसे अर्हत्स्वरूप पर अच्छा प्रकाश पड़ता है । 144 पदों में ऐसे लगभग 175 विशेषणों का उपयोग किया गया है । इन समस्त विशेषणों को आठ समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है । जो वस्तुत: अर्हन्तों के नाम हैं- वे हैं 1. कर्मकलंक विजय सूचक (2) ज्ञानादि गुणोत्कर्ष व्यंजक (3) पर हित प्रतिपादन-लोक हितैषिता मूलक (4) पूज्यताऽभिव्यंजक (5) शासनमहत्ता के प्रदर्शक (6) शारीरिक स्थिति और अभ्युदय मूलक (7) साधना की प्रधानता प्रकाशक और (8) मिश्रित गुणवाचक । इस स्तोत्र को भक्ति, ज्ञान और कर्म योग से यदि अध्ययन करें तो इसकी अनेक विशेषताएँ प्रकट होती हैं :

भक्तियोग के अन्तर्गत, यह कारिका दृष्टव्य है :

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे,
न निन्दया नाथः विवान्त-वैरे।
तथाऽपि ते पुण्य-गुण-स्मृतिर्नः,
पुनाति चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः ।। 57 ।।

जिनकी आत्मा में राग का एक अंश भी विद्यमान नहीं रहा, वे पूजा, भक्ति या स्तुति से प्रसन्न नहीं होते, और न ही प्रसन्न होकर भक्त के पापों को दूर ही करते हैं । उनके पाप तो आपके पुण्य-गुणों के स्मरण मात्र से दूर भाग जाते हैं। जैनदर्शन में की गई प्रार्थना आत्मोत्कर्ष की भावना का एक विशद रूप है :

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुक्ख-खयो, कम्म-खओ, समाहिमरणं च बोहिलाहो य ।
मम होउ तिजग बंधव । तव जिणवर चरण-शरणेण ॥

हे त्रिजगत के बन्धु जिनदेव! आपके चरण शरण के प्रसाद से मेरे दुःखों व कर्मों का क्षय, समाधिपूर्वक मरण और बोधिका - सम्यग्दर्शनादि का लाभ होवे ।

स्वयम्भूस्तोत्र में प्रार्थना के विविध अंलकृत रूपों को देखें :

(1) पुनातु चेतो मम नाभिनन्दन: (2) जिन: श्रियं मे भगवान विद्यत्ताम (3) ममाऽऽर्य देया: शिवतातिं मुच्चै: (4) पूयात्पवित्रो भगवान मनो मे।

ये सभी प्रार्थनाएं चित्त को पवित्र करने, आत्मविकास और आत्मोत्कर्ष के लिए की गई हैं ।

ज्ञानयोग : इसके अन्तर्गत स्तोत्र में ममत्त्व से विरक्त होना, बन्ध मोक्ष, दोनों के कारण बद्ध, मुक्त और मुक्तिका फल आदि की व्यवस्था स्याद्वादी, अनेकान्त दृष्टि के साथ की गई है । समाधि की सिद्धि निर्ग्रन्थ गुण से होती है, जो बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह के त्याग से ही सम्भव है । आसक्ति से तृष्णा की अभिवृद्धि और इन्द्रिय विषय के अधिकाधिक सेवन से तृप्ति न होकर तृष्णा की वृद्धि होती है। स्याद्वाद और अनेकान्त के द्वारा वस्तु व्यवस्था का सांगोपांग वर्णन आदि ज्ञान योग के अन्तर्गत है ।

कर्मयोग : इसका चरम लक्ष्य है आत्मा का पूर्ण विकास अर्थात् ब्रह्मपद प्राप्ति । कर्म मल को दूर करने के लिए, योग ध्यान और समाधि रूप प्रशस्त तप की अग्नि से इसे स्वाहा किया जा सकता है ।

स्व दोष मूलं स्व समाधि-तेजसा,
निनाय यो निर्दय भस्म सात्क्रियाम ॥4॥
यस्य च शुक्लं परमतपोऽग्नि,
ध्यानमनन्तं दुरितमधाक्षीत ॥ 110 ॥

अर्थात् शुक्ल ध्यानरुपी अग्नि से कर्ममल को जलाया जाता है ।

दृष्टि विकार के तिमिर को छेदने के लिये अनेकान्त पैनी-छैनी है । दृष्टि विकार के पश्चात् मोहभाव को दूर करना चाहिए । यही अन्तरंग परिग्रह है । अन्तरंग परिग्रह का पोषण बाह्य परिग्रह है। जिससे रागादिक की उत्पत्ति होती है इन सब के प्रतिकार के लिए एकदेश या सर्वदेश परिग्रह त्याग आवश्यक है । मुनिलिंग धारण बिना परिग्रह त्याग नहीं बनता। अत: त्याग ही तृष्णा नदी को सुखाने के लिए ग्रीष्मकालीन सूर्य के समान है । इन सभी प्रसंगों का वर्णन युक्तियुक्त ढंग से इस स्तोत्र में किया गया है ।

(4) युक्तत्यनुशासन : यद्यपि ग्रन्थ के आदि और अन्त के पद्यों में इस नाम का कोई उल्लेख नहीं है । टीकाकार श्री विद्यानन्दाचार्य ने बहुत स्पष्ट शब्दों में युक्त्यनुशासन नाम का स्तोत्र ग्रन्थ उदघोषित किया । यह परीक्षा प्रधान ग्रन्थ है । समन्तभद्र स्वयं परीक्षा प्रधानी थे और हर किसी के सामने अपना मस्तक नहीं टेकते थे । उन्होंने श्री वीर जिनेश को इसीलिए नमस्कार नहीं किया कि वे बिना विमान के आकाश में गमन करते थे या अष्ट प्रातिहार्य रूप विभूतियां उनके समवशरण में विद्यमान थीं, क्योंकि एक इन्द्रजाली या मायावी में भी ये गुण विद्यमान हो सकते हैं। आपकी महानता थी कि आपने मोहनीय कर्म के अभाव रूप अनुपम सुख शान्ति, ज्ञानावरणी और दर्शनावरणी कर्मों का नाशकर अनन्तदर्शन और केवलज्ञान का उदय किया तथा अन्तराय कर्म के विनाश से अनन्तवीर्य रूप शक्ति को प्राप्त होकर मोक्षमार्ग के नेता बने ।

इस स्तोत्र में शुद्धि और शक्ति की पराकाष्ठा को प्राप्त हुए श्री वीर जिनेन्द्र के अनेकान्तात्मक और स्याद्वाद मत को पूर्णता: निर्दोष एवं अद्वितीय माना ।

इस प्रकार समन्तभद्र स्वामी के उक्त चार ग्रन्थ-स्तुति परक हैं जिनकी प्रमुख विशेषताओं का, अति संक्षेप में प्रस्तुत आलेख में वर्णन किया गया है।

जवाहर वार्ड, बीना (म.प्र.)

वीर देशना

- जिस प्रकार अंधे के आगे नाचना, बहरे के आगे गाना, व्यर्थ होता है और कौवे को शुद्ध करना, मृतक को भोजन करवाना, नपुंसक का स्त्री पाना व्यर्थ होता है, उसी प्रकार मूर्ख के लिए दिया गया सुखकर रत्न भी व्यर्थ होता है।

Just as it is futile to dance in front of a blind man, sing before a deaf one, purify a crow, feed a carcass and talking of a woman by an eunuch, similarly, it is useless to offer a comforting jewel to an idiot.

मुनिश्री अजितसागर जी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पं जगन्मोहन लाल जी की नवम पुण्यतिथि (१९०१-१९९६)

परिग्रह-परिमाण व्रत और पं. जगन्मोहन लाल जी शास्त्री

ब्र. अमरचंद्र जैन

सिद्धक्षेत्र कुंडलपुर में सद्य: निर्मित श्री महावीर उदासीन आश्रम के उद्घाटन के अवसर पर मेरे एक मित्र ने मुझे लिखा कि आश्रम के संस्थापक बाबा गोकुल चंद्र जी ने गणेशीलाल को संत गणेश वर्णी बनने का मार्ग प्रशस्त किया। उन्हीं वर्णी महाराज ने बारह वर्षीय जगन्मोहन को 'परिग्रह-परिमाण व्रत' देकर सेठ मनमोहन बनने से रोककर पंडित जगन्मोहन लाल बनने की दीक्षा दी थी । यह घटना जैन समाज के इतिहास का एक गौरव है ।

बात बीसवीं सदी के पहले-दूसरे दशक की है। कुंडलपुर में उपर्युक्त आश्रम के निर्माण में मेरे पितामह बाबा गोकुलचंद्र जी ने सहयोग हेतु अनेक गाँवों का भ्रमण किया। मेरे पिताजी भी अनेक अवसरों पर उनके साथ थे । मेरे पिताजी के सुन्दर और आकर्षक व्यक्तित्व से प्रभावित होकर सिवनी से सेठ गोपालशाह और खुरई के सेठ मोहनलाल जी ने उन्हें गोद लेने का आग्रह किया । पर मेरे पितामह ने कहा, 'बालक ने परिग्रह-परिमाण व्रत लिया है, इसलिए यह संभव नहीं है।'

कुछ समय बाद कटनी के सवाई सिंघई कन्हैयालाल जी ने उन्हें गोद लेने हेतु निवेदन किया। चूँकि मेरे पितामह इस परिवार से पीढ़ियों से संबंधित थे, अत: बहुत विचार-विमर्श के बाद यह निर्णय लिया गया कि जगन्मोहन स्वामित्व नहीं, दायित्व निर्वाह कर सकेगा।

अत: उनकी शिक्षा की व्यवस्था की गई। शिक्षित होने पर 'शिक्षा संस्था कटनी' की स्थापना की गई जहाँ इन्हें धर्माध्यापक के पद पर प्रतिष्ठित किया गया। अध्यापन के कार्य से जीविका न लेने के कारण इन्हीं पूर्वजों ने एक गाँव की मालगुजारी की आमदनी से इन्हें अपनी जीविका चलाने का समाधान दिया था ।

अंत तक शिक्षा के बदले वेतन न लेने वाले इन पंडित जी ने अपनी जीविका चलाई तथा स.सिं. कन्हैयालाल जी के जीवनकाल में तथा उसके बाद भी इस परिवार की सामाजिक एवं धार्मिक प्रतिष्ठा में योगदान किया । उनके अनेक पारिवारिक ट्रस्ट एवं मंदिरों की संपूर्ण व्यवस्था में समुचित मार्गदर्शन दिया ।

इसतरह पंडित जी अपने जीवन में तीन बार 'सेठ' होते-होते बचे तथा एक 'परिग्रह-परिमाण व्रत' के कारण उन्होंने अंत में समाधिमरण प्राप्त किया ।

पूज्य वर्णी जी के साक्षात् शिष्यों की समाज में बड़ी प्रतिष्ठा रही है। पर ज्यों ज्यों समय बीतता गया, उनकी पीढ़ी समाप्त होती रही। वर्णी जी के समान ज्ञानाराधना के साथ चरित्राराधना करने वाले शिष्य तो बहुत ही कम रह गये। इन विरल विद्वानों में जिनका सम्मान से स्मरण किया जाता है, उनमें एक हैं, पं. जगन्मोहन लाल जी ।

अपने व्रत को निरतिचार पालते हुये उन्होंने भगवान् को साक्षी बनाकर १९७४ में ब्रह्मचर्य-प्रतिमा ग्रहण की। व्रतों के इसप्रकार पालन की आस्था उनमें बचपन से ही थी। इसी कारण उनका जीवन संघर्षमय तो रहा, पर संतोष एवं संयम ने उनका साथ नहीं छोड़ा। अपने पांडित्य तथा समाज-धर्म के प्रति दायित्व के निर्वाह से उन्होंने पूरे देश में प्रतिष्ठा पाई।

'परिग्रह परिमाण व्रत' के कारण उनके जीवन का विकास एक संतोषी श्रावक और प्रामाणिक विद्वान के रूप में हुआ। अनेक प्रकार के प्रलोभन आने पर भी उन्होंने व्रत की मर्यादा का कभी उल्लंघन नहीं किया।

उनके सप्तम प्रतिमा धारण करने तक आ. विद्यासागर जी बुंदेलखण्ड क्षेत्र में नहीं आ पाये थे। बाद में आचार्य भी उनसे प्रभावित हुए और उन्हें, उच्चतर प्रतिमा ग्रहण करने के लिये, उन्होंने प्रेरित किया। पर पंडित जी ने अपनी पराश्रित शारीरिक अवस्था के कारण इसमें अपनी असमर्थता व्यक्त की। तथापि उन्होंने ९५ वर्ष की अवस्था में कुंडलपुर क्षेत्र पर आचार्यश्री के ससंघ सानिध्य में समाधि प्राप्त की। इस प्रकार उनकी संयम यात्रा का मंगलाचरण ८२ वर्ष पूर्व कुंडलपुर की पावन धरती पर हुआ और समापन भी वहीं हुआ। मेरी उनके प्रति श्रद्धांजलि।

कुंडलपुर (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुजरात राज्य के जूनागढ़ जिले में स्थित प्रमुख जैन तीर्थ श्री गिरनारजी पर्वत पर अतिक्रमण और उसका स्वरूप परिवर्तन

एन.के. सेठी

पृष्ठभूमि

जैन शास्त्रों और मान्यताओं के अनुसार श्री गिरनारजी पर्वत श्री सम्मेदशिखरजी के बाद, जैनों का दूसरा सबसे महत्वपूर्ण तीर्थ है। पहली शताब्दी से आज तक जैन शास्त्रों में ऐसे असंख्य उल्लेख हैं जो प्रमाणित करते हैं कि जैनों के बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ और अनेक जैन मुनियों ने गिरनार पर्वत पर तपस्या की और पर्वत के विभिन्न शिखरों से वे मोक्ष गये। उन मोक्ष-स्थलों पर उनके चरणचिन्ह स्थित हैं। भगवान् नेमिनाथ के तीन कल्याणक, यथा दीक्षा कल्याणक, तप कल्याणक व मोक्ष कल्याणक इसी पर्वत पर हुए। गिरनार पर्वत इसी कारण से सिद्धक्षेत्र कहलाता है। पर्वत के शिखरों पर अनेक विख्यात जैन राजाओं, उनके मंत्रियों और सामान्य व्यक्तियों ने भी अत्यन्त भव्य और दर्शनीय तथा कलापूर्ण मंदिर बनवाये हैं तथा मूर्तियाँ और चरण आदि स्थापित किये हैं। बहुत बड़ी संख्या में जैनयात्री इन मंदिरों और चरणचिन्हों के दर्शन पूजन करने के लिए अनादिकाल से श्री गिरनारजी पर्वत पर जा रहे हैं और बिना किसी बाधा के वहाँ पूजा-पाठ करते आ रहे हैं। श्री नेमिनाथ एक ऐतिहासिक व्यक्तित्त्व थे और भगवान् कृष्ण के चचेरे भाई थे। हिन्दू धर्म-शास्त्रों में उनका उल्लेख अरिष्टनेमि के नाम से आता है।

श्री गिरनारजी पर्वत स्थित जैनतीर्थ के ऐतिहासिक, कलात्मक और धार्मिक महत्व तथा प्राचीनता के कारण तत्कालीन सौराष्ट्र राज्य ने तथा बाद में अन्य सरकारों ने पर्वत की पाँचवीं व तीसरी टोंक सहित अन्य कुछ स्थलों को पुरातत्त्व की दृष्टि से "संरक्षित स्मारक" घोषित करते हुये उनके मूल-स्वरूप और शिल्प को तथा पूज्यनीय वस्तुओं की सुरक्षा और संरक्षण का कानूनी उत्तरदायित्व स्वीकार किया है।

केन्द्रीय सरकार भी पूजास्थल (विशेष उपबन्ध) अधिनियम, १९९१ बनाकर १५ अगस्त, १९४७ को पूजा-स्थलों के स्वरूप के संरक्षण का तथा उनके स्वरूप में कोई परिवर्तन न होने देने के कानूनी कर्तव्यों को पूरा करने के लिए वचनवद्ध है। भगवान् महावीर के २६००वें जन्म महोत्सव के अवसर पर केन्द्र सरकार ने ढाई करोड़ से अधिक की राशि श्री गिरनारजी जैन तीर्थ के विकास के लिए मंजूर की थी।

वर्तमान समस्या

केन्द्र सरकार और राज्य सरकार के ऊपर उल्लेखित कानूनी कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों के होते हुए भी वहाँ कतिपय असामाजिक तत्वों ने कुछ ऐसी अवांछनीय एवं गैर-कानूनी कार्य किये हैं जिनसे पर्वत-श्रृंखला पर बने स्थलों के जैन स्वरूप में परिवर्तन हुआ है। सन् १९०२ एवं १९१४ में पाँचवी टोंक पर बनी छत्री के बिजली के नष्ट होने की स्थिति में श्री बंडीलाल दिगम्बर जैन कारखाना, श्री गिरनारजी द्वारा अनुमति चाहे जाने पर जूनागढ के नवाब ने उन्हें छत्री के पुनर्निर्माण की अनुमति प्रदान की थी। सन् १९८१ में छत्री के नष्ट होने पर जब इस संस्था ने पुन: इजाजत मांगी तो सरकार ने यह कहकर इन्कार कर दिया कि पाँचवीं टोंक संरक्षित स्थल है अत: सरकार स्वयं छत्री का निर्माण करायेगी। गत वर्ष अर्थात् सन् २००४ के मई माह में वहाँ कुछ असामाजिक तत्वों द्वारा अनाधिकृत रूप से छत्री का निर्माण प्रारम्भ किया गया, जिसके विरुद्ध गुजरात उच्च न्यायालय में याचिका प्रस्तुत की गई। गुजरात उच्च न्यायालय ने यथा-स्थिति बनाये रखने के आदेश दिये, किन्तु असामाजिक तत्वों द्वारा छत्री का निर्माण रोका नहीं गया। इतना ही नहीं भगवान् नेमिनाथ के चरणचिन्हों के पास गुरु दत्तात्रेय की ढाई फुट ऊँची प्रतिमा अनाधिकृत रूप से विराजमान कर दी गई। भगवान् नेमिनाथ के चरणों पर चढ़ाये जानेवाले चढ़ावे को हथियाने के लालच में कुछ असामाजिक तत्वों ने जैन तीर्थयात्रियों से दर्शन-पूजन करने के लिए बलपूर्वक धन वसूलना शुरू कर दिया और उनको भगवान् नेमिनाथ की जय बोलने से भी मना करने लगे। विरोध करने पर तीर्थ यात्रियों को असामाजिक तत्वों द्वारा मारा-पीटा गया, जिसकी प्रथम-सूचना-रिपोर्ट पुलिस-थानों में दर्ज हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुजरात उच्च न्यायालय ने इस स्थिति को ध्यान में रखकर पर्वत पर पुलिस व्यवस्था के आदेश दिये, किन्तु फिर भी असामाजिक तत्वों द्वारा जैनियों द्वारा की जानेवाली पूजा-अर्चना में विघ्न डालना बंद नहीं किया गया।

गुजरात उच्च न्यायालय में याचिका के चलते हुए और स्थगन आदेश के बावजूद मई २००५ के मध्य में कुछ महन्तों ने पर्वत वंदना प्रारम्भ होने के स्थान पर "श्री गिरनार गुरु दत्तात्रेय प्रवेश द्वार" के निर्माण के लिए भूमिपूजन करवा लिया। कुछ असामाजिक तत्वों का यह कहना है कि श्री गिरनारजी की पाँचवें शिखर पर जो चरण हैं वे गुरु दत्तात्रेय के हैं, जबकि सच यह है कि उक्त चरणचिन्ह भगवान् नेमिनाथ के हैं और हजारों वर्षों पूर्व तब स्थापित किये थे जब नाथ सम्प्रदाय का जन्म भी नहीं हुआ था। ध्यान देने योग्य यह है कि श्री नेमिनाथ के चरणचिन्ह गिरनार पर्वत के शिखर पर विद्यमान होने के उल्लेख पहली शताब्दी के पूर्व के हैं। सन् १८७४-७५ में जैम्स वर्गीस, जो पुरातत्त्व विभाग के डायरेक्टर जनरल थे, ने यह स्पष्ट रूप से लिखा है कि पाँचवीं टोंक पर केवल दो ही पूजनीय स्थल हैं : एक भगवान् नेमिनाथ के चरण और दूसरा : शिला पर उकेरी हुई भगवान् नेमिनाथ की मूर्ति। यह भी ध्यान देने योग्य है कि तलहटी से लेकर पर्वत की टोंकों तक जाने के लिए लगभग दस हजार सीढियों का मार्ग है। यह सभी सीढ़ियाँ जैनियों द्वारा आज से ८०० वर्ष पूर्व निर्माण कराई गई थी और तब से ही जैन संस्था ही उनका रख-रखाव करती आ रही हैं। तलहटी में श्री गिरनार गुरु दत्तात्रेय प्रवेशद्वार के नाम से नया प्रवेशद्वार बनाने का कोई औचित्य नहीं है। यह तो केवल जैनियों के श्री गिरनारजी पर्वत के लिए प्रवेश को रोकने का एक षडयंत्र है।

अपने षडयंत्र के क्रम में असामाजिक तत्वों ने ०७ जून, २००५ को तीसरी टोंक पर भी मुनि श्री शम्भु कुमार जी के आदिकालीन चरणचिन्हों की बगल में गुरु गोरखनाथ और बाबा रामदेव की मूर्तियाँ स्थापित कर दी।

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी ने श्री गिरनारजी तीर्थ के सम्बन्ध में देश के सभी दिगम्बर जैन राष्ट्र-स्तरीय संस्थाओं को संगठित करते हुए श्री गिरनारजी तीर्थ राष्ट्र-स्तरीय एक्शन कमेटी का गठन किया है। श्री गिरनारजी तीर्थ राष्ट्र-स्तरीय एक्शन कमेटी की ओर से भारत के राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री एवं अन्य सभी संबंधित महानुभावों को ज्ञापन भेजे गये हैं। जूनागढ की पुलिस को तीसरी टोंक पर किये गये अतिक्रमण के सम्बन्ध में जब प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करवाने का प्रयास किया गया, तो प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज नहीं की और यह कहा कि तीसरी शिखर संरक्षित स्थल है, अत: पुरातत्त्व विभाग द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करायी जानी चाहिए। इन घटनाओं से तथा केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकार की ढिलाई से व्यथित होकर प्रमुख जैन आचार्य श्री मेरूभूषण जी महाराज ने २५ अक्टूबर, २००४ को जब वे कर्नाटक में थे, अन्न त्याग कर दिया था। उन्होंने ३० जनवरी, २००५ के आमरण अनशन (उपसर्ग सल्लेखना) की घोषणा की थी, किन्तु समाज और एक्शन कमेटी के आग्रह को ध्यान में रखकर ३० जनवरी से किये जानेवाला आमरण अनशन स्थगित कर दिया था। तीसरी टोंक की नवीन घटनाओं और श्री गिरनारजी प्रवेशस्थल पर दत्तात्रेय प्रवेशद्वार बनाने जैसी कुचेष्टा से व्यथित होकर आचार्य श्री मेरूभूषण जी महाराज ने २८ जुलाई, २००५ से आमरण अनशन (उपसर्ग सल्लेखना) इन्दौर में प्रारम्भ कर ली। इससे देश का सम्पूर्ण जैन समाज आन्दोलित है। श्री गिरनारजी तीर्थ राष्ट्र-स्तरीय एक्शन कमेटी ने गुजरात उच्च न्यायालय में उपरोक्त दोनों अवांछनीय घटनाओं को लेकर नयी याचिकायें प्रस्तुत की हैं।

दिनांक ०९ अगस्त, २००५ को गुजरात के मुख्यमंत्री माननीय श्री नरेन्द्र मोदी जी ने जैन समाज के प्रतिनिधि मण्डल को ध्यानपूर्वक सुना और जिला कलेक्टर तथा पुलिस अधीक्षक जूनागढ़ से वीडियो कोन्फ्रेन्सिंग के माध्यम से सही स्थिति का आकलन किया और नरेशकुमार सेठी, अध्यक्ष, एक्शन कमेटी के नेतृत्व में गये प्रतिनिधि मण्डल को यह आश्वस्त किया कि वे जैनियों के विरुद्ध कोई अत्याचार नहीं होने देंगे। साथ ही साथ उन्होंने आचार्य श्री मेरूभूषण जी महाराज से आमरण अनशन (उपसर्ग सल्लेखना) त्यागने का अनुरोध किया। आचार्यश्री ने जैन समाज, एक्शन कमेटी एवं गुजरात के मुख्यमंत्रीजी का निवेदन स्वीकार करते हुए १३ दिन से चल रहे अपने आमरण अनशन को १० अगस्त, २००५ को विराम अवश्य दे दिया है, किन्तु वे अभी भी अन्न -त्याग जारी रखे हुए हैं।

जैनसमाज अहिंसक समाज है, किन्तु समाज पर होने वाले अत्याचारों के खिलाफ अपनी आवाज बुलन्द करना आवश्यक है। श्री गिरनारजी पर्वत की घटनाओं पर एक्शन कमेटी के आह्वान पर चार सूत्रीय विशाल जन-आन्दोलन प्रारम्भ किया गया है। इसमें पहली कड़ी के रूप में १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अगस्त को देश के सभी भागों में सामूहिक पूजन और श्री गिरनारजी तीर्थ बचाने के लिए संकल्प पत्र भरे गये। दिनांक ११ सितम्बर को सामूहिक पूजन के साथ-साथ जैनियों द्वारा एक दिन का उपवास रखा जायेगा। दिनांक ०६ नवम्बर को राज्यों की राजधानियों और जिला मुख्यालयों पर समाज की ओर से मौन जुलूस निकालकर ज्ञापन प्रस्तुत किये जायेंगे और १८ दिसम्बर को दिल्ली में विशाल मौन जुलूस (महारैली) का आयोजन किया जायेगा।

यह सर्वविदित है कि भारत में दो महान् संस्कृतियाँ- वैदिक संस्कृति तथा श्रमण (जैन) संस्कृति सदियों से साथ-साथ चली आ रही हैं और दोनों संस्कृतियों को माननेवालों के बीच जो प्रेम, भाईचारा और सह-अस्तित्त्व चला आ रहा है, वह उदाहरणयोग्य है। कुछ असामाजिक तत्त्वों द्वारा उसमें जहर घोलने के प्रयास को सहन नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि इसमें चिरकालीन बन्धुत्व और शान्ति नष्ट हो जायेगी। जैनसमाज एक धार्मिक अल्पसंख्यक समाज है और बहुसंख्यक समाज का कर्तव्य है कि वे बहुसंख्यक होने के अपने कर्तव्य का निर्वहन करें।

गिरनार पर्वत स्थित जैन मंदिरों एवं चरणचिन्हों के कुछ फोटोग्राफ्स के ऊपर उल्लेखित घटनाओं के पूर्व लिये गये थे ,दर्शाते हैं कि वहाँ पहले जैन मूर्ति एवं चरणचिन्ह के अलावा अन्य मूर्तियाँ नहीं थीं। केवल जैन मूर्तियाँ एवं चरण-चिन्ह ही थे। जैनतीर्थ के स्वरूप को बदलकर अन्य स्वरूप बनाने के इरादे से वहाँ मूर्तियाँ रखी गई हैं और पुरातत्त्व से छेड़छाड़ की जा रही है।

अध्यक्ष,
भारतवर्षीय दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, मुम्बई

युवा-पीढ़ी

मनोज जैन 'मधुर'

नई सदी की नई सीढ़ी, पीढ़ी युवा चढ़ने लगी।
बिटिया हमारी पश्चिमी, स्कूल में पढ़ने लगी।

(१)

डर किसे भगवान का, अब पाप करने में उजागर।
धर्म को घेरे खड़े हैं, राजनीति के निशाचर॥

चोला पहिनकर प्यार का, अब वासना फिरने लगी।
यातना की मार से, संवेदना घिरने लगी॥

सीमा जवानी तोड़कर, निर्वस्त्र होकर नाचती।
भावी भयावह कल्पना से, वृद्धपीढ़ी काँपती॥

कृष्ण गीता पर तुम्हारी, धूल अब चढ़ने लगी।
बिटिया हमारी पश्चिमी, स्कूल में पढ़ने लगी॥

(२)

आदर्श अब इस देश का, तंदूर में सिकने लगा।
या मगर का भोज्य बन, तालाब में फिकने लगा॥

ब्रह्मचर्य का आचरण, इतिहास बनकर रह रहा।
सद्‌गुणों का अब विषय, परिहास बन सब सह रहा॥

अवतरित अब इस जहाँ में, किसलिए भगवान हो।
इस धरा के जब मनुज का, हृदय ही पाषाण हो॥

ममता स्वयं अब स्वयं को, निज कोख में डसने लगी।
बिटिया हमारी पश्चिमी, स्कूल में पढ़ने लगी॥

सी ५/१३, इंदिरा कॉलोनी,
बाग उमराव दुल्हा, भोपाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेढ़कों ने ली राहत की साँस

डॉ. ज्योति जैन

एक दिन अपनी एक परिचिता के यहाँ जाना हुआ। उनकी छोटी-सी पोती अपनी नर्सरी की किताब लिये घूम रही थी। बात करने के लिये मैंने उसे बुलाया, नाम आदि पूछा, किताब देखी। उसने अपनी तोतली भाषा में कहा, 'आंटी! ये देखो एफ, एफ फार एक तो फ्लेग (झंडा) एक फिश (मछली) और एक है फ्राग (मेढ़क), लेकिन ये तो मैंने कभी देखा ही नहीं।' हाँलाकि बरसात के दिन थे, पर मुझे लगा कि मेढ़क तो अब सचमुच दिखाई ही नहीं देते हैं। पहले तो बरसात होते ही उनकी टर्र-टर्र की आवाज सुनाई देती थी। लगा कि जीव-जन्तुओं का सन्तुलन तो बिगड़ ही रहा है। अब शायद चित्र या मॉडल रूप में ही ये जन्तु दिखाने पड़ जायें।

प्रकृति सबकी माँ है और उसकी गोद में रहनेवाले समस्त जीव-जन्तुओं का एक-दूसरे से एक प्राकृतिक रिश्ता है, एक-दूसरे से जुड़ी हुई एक श्रृंखला है, एक चक्र है। ये परस्पर एक-दूसरे के पूरक भी हैं। भारतीय समाज में अनादि-काल से जीव-जन्तुओं के संरक्षण की एक समृद्ध परम्परा रही है। पूजा के रूप में गाय, भैंस, बकरी, घोड़ा आदि की। प्रकृति से जीव-जन्तु व मानव का सदैव गहरा संबंध रहा है।

अपनी बदलती जीवन-शैली और वैचारिक-परिवर्तन से हमने प्रकृति और मनुष्य के संबंधों को ही बदल दिया है। इसीकारण हम पर्यावरण के असंतुलन और बढ़ते प्रदूषण से घिरते जा रहे हैं। चिड़िया, मेढ़क, केचुआ, गिलहरी आदि निरीह जीव-जन्तु अपना अस्तित्त्व खोते जा रहे हैं। जिन्हें प्रकृति ने जीने का अधिकार दिया, इंसान उन्हें समाप्त करने पर तुला हुआ है। जीव-जन्तु हमारी प्राकृतिक धरोहर हैं। इसीभावना को भारत के संविधान के अनुच्छेद ५१ (ए) में भी दर्शाया गया है। वहाँ कहा गया है कि प्रत्येक भारतीय नागरिक का कर्तव्य है कि 'प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करें और उनका संवर्धन करें तथा प्राणीमात्र के प्रति दयाभाव रखें।' संविधान में व्यवस्था तो हो गयी, पर पालन कितना हो पा रहा है यह चिन्ता का विषय है।

प्रकृति का एक जीव है मेढ़क। प्रकृति ने मेढ़क के शरीर की संरचना इसतरह से की है कि उसका शरीर बायलॉजी के विद्यार्थियों के प्रयोग के लिये सबसे उपयुक्त है। इसी विशेषता के कारण लाखों, करोड़ों मेढ़क प्रयोगशालाओं में शहीद होते आ रहे हैं। यद्यपि बायलॉजी के सभी छात्र डॉक्टर नहीं बनते, फिर भी प्रयोगशाला में मेढ़कों की चीरफाड़ सभी को करनी पड़ती थी। स्कूलों में मेढ़कों का दुरुपयोग भी बहुत होता था, जितने चाहिए उससे ज्यादा ही बेहोश कर दिये जाते थे। कुछ मेढ़क तो यूँ ही मर-खप जाते थे। कुछ शरारती विद्यार्थी इस क्रूरता के खेल में शामिल हो विभिन्न प्रकार से एक्सपेरिमेंट कर उन्हें मार देते थे और ये खेल एक्सपेरिमेन्ट प्रयोगशाला के बाहर भी होते थे। कोई मेढ़क दिख जाये तो उस पर भी करने लगते थे। ऐसे बच्चों में दया-करुणा की भावना तो दूर, जीव-जन्तुओं के प्रति एक क्रूरता की भावना जन्म ले रही थी। इस तरह शिक्षा के दौरान होनेवाली प्रायोगिक चीरफाड़ में प्रतिवर्ष लाखों-करोड़ों की संख्या में मेढ़कों का खात्मा हो रहा था।

मेढ़क एक तरह से पर्यावरण संरक्षण का महत्वपूर्ण कार्य करता है। वह किसानों का सदैव साथी रहा है। विषैले कीड़ों, चूहों आदि के विनाश में सहायक रहे मेढ़कों का जब स्वयं ही विनाश होने लगा तो पर्यावरण सन्तुलन बिगड़ने लगा। १९८७ में करीब दो करोड़ मेढ़कों का चीरफाड़ में उपयोग देश के स्कूलों में किया गया। मेढ़कों की लगभग २०५ प्रजातियों में से अनेक लुप्त होने की कगार पर आ गयीं। इसीतरह १९८६ से पहले भारत विश्व में मेढ़क की टांग निर्यात करनेवाला सबसे बड़ा देश था। लेकिन अब इस पर प्रतिबंध लगा दिया गया है।

क्रूरता-निवारक जन्तु अधिनियम १९६० के तहत स्कूली प्रयोगशालाओं में जन्तुओं की चीरफाड़ को भी क्रूरता के दायरे में रखते हुए इसे प्रतिबंधित किया गया था पर फिर भी प्रयोग चलते रहे। समय-समय पर जीवदया संबंधी संगठनों, शाकाहारी संगठनों एवं अनेक स्वयंसेवी संगठनों, साधुसन्तों (विशेषतः आचार्य श्री विद्यासागरजी, मुनि श्री सुधासागरजी, मुनि श्री क्षमासागरजी, मुनि श्री अभयसागरजी) ने इसके विरोध में स्वर उठाये। तब अनेक प्रदेशों की सरकारों ने इन्टरमीडिएट कक्षाओं में मेढ़क के डिसेक्शन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(विच्छेदन) पर रोक लगायी, इससे निश्चित ही उन लाखों करोड़ों मेढ़कों और मेढ़क ही क्यों, प्रयोगशालाओं में प्रयुक्त होनेवाले जीव-जन्तुओं को राहत मिली। यद्यपि वैज्ञानिकों ने इस पर घोर आपत्ति जताई। उनका कहना था कि इससे छात्रों की नींव कमजोर होगी, पर यह मिथ्या प्रचार था। सभी बच्चे डाक्टरी की पढ़ाई में नहीं जाते,जबकि सभी को प्रेक्टिकल करना पड़ता था और अनावश्यक ही इतने जीव-जन्तु मारे जाते थे। पर फिर भी इन जीव-जन्तुओं के डिसेक्शन (विच्छेदन) पर पाठ्यक्रम में प्रतिबन्धित कराये जाने में सफलता प्राप्त हो गयी।

अनेक बोर्डों, जैसे माध्यमिक शिक्षा मण्डल भोपाल (म.प्र.), सी.बी.एस.ई. नई दिल्ली, गुजरात सैकेण्डरी एजूकेशन बोर्ड गाँधीनगर, हरियाणा बोर्ड (भिवानी), उ.प्र. हाई स्कूल एण्ड इण्टरमीडिएट एजूकेशन बोर्ड इलाहाबाद आदि ने अपने-अपने पाठ्यक्रमों से जीवविज्ञान-विषयक प्रायोगिकी में डिसेक्शन पर पूर्णत: प्रतिबन्ध लगा दिया है। इसके लिये सहायक सामग्री, चार्ट्स, मॉडल, कम्प्यूटर, सी.डी. आदि के उपयोग को निर्देशित किया गया है। शिक्षा बोर्ड का यह कदम निश्चित ही सराहनीय व अनुकरणीय है, साथ ही पर्यावरण -संरक्षण एवं प्राणियों के हित में वरदान है। जहाँ प्रतिबन्ध नहीं है, वहाँ प्राचार्य, शिक्षक, अभिभावक, विद्यार्थी, जीवदया से संबंधित संगठन, स्वयंसेवी संस्थायें एवं प्रबुद्ध नागरिक इस जीव कल्याणकारी निर्णय को व्यापक रूप से प्रचारित व प्रसारित करायें।

अमेरिका, इटली, जर्मनी आदि विकसित देशों में रबड़ के कृत्रिम जीव-जन्तुओं की हू-ब-हू आकृतियाँ प्रयोगशाला के लिये बनायी जाती हैं। इनका आकार, स्वरूप, चीर-फाड़ करने के लिये आमाशय, नाड़ियाँ, यकृत आदि अंग भी रहते हैं। शारीरिक संरचना के अध्ययन के लिये यह उपयुक्त भी है। भारत में भी इसकी शुरूआत हो गयी है। आज कम्प्यूटर आदि साधनों के माध्यम से भी सब कुछ सहजता से समझाया जा रहा है, फिर जीव-जन्तुओं का विनाश क्यों किया जाये? इसतरह जहाँ एक ओर जीव-जन्तुओं के संरक्षण से हमारा पर्यावरण सन्तुलन भी बना रहेगा, वहीं दूसरी ओर भारतीय संस्कृति के मूल सिद्धान्त अहिंसा, करुणा, दया, मैत्रीभाव आदि की भी रक्षा हो सकेगी।

शिक्षक आवास,

कुन्दकुन्द जैन महाविद्यालय परिसर, खतौली (उ.प्र.)

बोधकथा

अध:पतन का कारण

डॉ. आराधना जैन 'स्वतंत्र'

शिष्यों ने गुरु से शिक्षा प्राप्त कर ली। एक दिन बाद उन्हें धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए गुरु के निर्देशानुसार अलग-अलग स्थान पर जाना था। अत: सभी शिष्य आपस में बैठकर चर्चा कर रहे थे कि हमें जनता को अध:पतन से बचाने और धर्म के सम्मुख करने के लिए क्या उपाय करना चाहिए। तभी एक ने कहा-लोभ त्याग, दूसरे ने कहा- अहंकार का त्याग, तीसरे ने कहा-अहिंसा का पालन, चौथे ने कहा-काम वासना का त्याग। चर्चा में सभी के उत्तर भिन्न-भिन्न होने से शिष्य सन्तुष्ट नहीं हुए। वे गुरु के पास गये और विनम्रतापूर्वक अपनी समस्या उन्हें बतलाई। गुरु ने उनसे पूछा- यह बताओ कि मेरा कमण्डल किस पदार्थ से बना है? शिष्यों ने कहा-लकड़ी का कमण्डल बना है। गुरु ने पुन: पूछा- यदि इसे नदी में डाल दें तो क्या होगा? उत्तर मिला- नदी में कमण्डल तैरेगा। यदि कमण्डल में एक छेद करके नदी में छोड़ दें तो क्या परिणाम होगा? गुरु ने प्रश्न किया। शिष्यों ने बतलाया- कमण्डल नदी में डूब जायेगा। गुरुजी पुन: बोले -यदि मैं कमण्डल में दायीं ओर छेद कर दूँ तो क्या होगा? शिष्यों ने उत्तर दिया- आप कमण्डल में किसी भी ओर छेद करें कमण्डल नियम से डूबेगा ही। गुरुजी ने शिष्यों को समझाया- वत्सो! यह मानव-जीवन कमण्डल के समान है। इसमें कोई भी दुर्गुणरूपी छिद्र होते ही पतनरूपी जल प्रवेश करके उसे पतित बना देता है। अत: मानव को अध:पतन से बचाने के लिए और धर्मसम्मुख करने के लिए उसके दुर्गुणरूपी छिद्र बन्द करना होंगे।

गंजबासौदा (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्कार से संस्कृति के जुड़ते तार

डॉ. वन्दना जैन

स्वामी विवेकानंद जी अमेरिका की यात्रा से भारत आ रहे थे, कि तभी पत्रकारों ने उनकी भारत के बारे में राय जाननी चाही, तब उन्होंने कहा कि, 'अभी तक तो मैं भारत से प्यार करता था, पर अब मैं उसकी पूजा करूँगा।' पत्रकारों को बात समझ में नहीं आई तब उन्होंने समझाया, कि भारत में विपन्नता के बाद भी लोग सुख से जीते हैं तथा अमेरिका में सम्पन्नता ही नहीं अति आधुनिकता है, फिर भी एक पुस्तक वहाँ बहुत बिक रही है, उसका नाम है, 'हाऊ टू डू सोसाइड' आत्महत्या के सरल तरीके, इसका क्या कारण है? वहाँ साधन तो बहुत हैं, पर सुख नहीं है। सामग्री भरी पड़ी है, पर शांति का नोमोनिशान तक नहीं है। किसी कवि ने कहा है :

साधन में सुख होता नहीं है,सुख जीवन की एक कला है।
मुझसे ही हल किया न तूने, अपने को तूने आप छला है॥

भारत की जनता राजा को पालती आई है, और वहाँ (विदेशों) का राजा जनता को पालता है। यह हमारे संस्कार ही हैं कि हम अपने अस्तित्त्व को अभी तक बचाये हुए हैं। भले ही वह कुछ धूमिल पड़ते दिखाई दे रहे हों, पर जब जड़ें गहरी होती हैं तो वृक्ष की हरियाली कभी सूखने नहीं पाती। और यह संस्कार हमें बचपन से घुट्टी में पिलाये जाते हैं, या यों कहें कि गर्भावस्था से ही डाले जाते हैं।

परिवार बच्चे की प्रथम पाठशाला होता है तथा माँ उसकी प्रथम गुरु। एक माँ ही है जो बच्चे को ऊँचाइयों पर पहुँचा देती है। उन्नति के सोपान माँ के आँचल से जुड़े होते हैं। हों भी क्यों न ? जितनी भी कोमल शब्दावली है, उसमें से अधिकांश स्त्रीलिंग में ही है। करुणा कैसी, दया कैसी, ममता कैसी और मोह कैसा, पाप कैसा, लोभ कैसा आप स्वयं तुलना कर लीजिए। वर्तमान में शोधों द्वारा पता लगाया गया है कि शिशु को शुरुआत से ही एक स्त्री शिक्षा दे अथवा महिला उसकी टीचर हो तो उसका विकास अपेक्षाकृत अधिक जल्दी होता है तथा उसमें सद्संस्कारों का बीजारोपण होता है। क्योंकि महिला में कुछ ऐसे जन्मजात गुण होते हैं जो बच्चे का भविष्य सँवार देते हैं।

इसके बाद बच्चा अन्य लोगों व पाठशालाओं के सम्पर्क में आता है और वहाँ से उसे वो संस्कार दिये जाते हैं जो कि उस पर स्थाई होते हैं और उसके व्यक्तित्त्व पर अमिट छाप छोड़ते हैं। क्योंकि बच्चे कोमल मिट्टी की तरह होते हैं। उन्हें जिसतरह का आकार दिया जायेगा वे उसी आकार में ढल जायेंगे।

आज की आधुनिकता की अंधी दौड़ में सद्संस्कार ढूँढ़े से भी दिखाई नहीं देते हैं। हमारा जीवनमूल्य लगातार गिरता जा रहा है। जीवन के प्रति हमारा दृष्टिकोण बदल गया है। सारी दुनियाँ में जो भारत की साख थी, विश्व गुरुवाली छवि कुछ धुंधली-सी होने लगी है। सारे विश्व में भारत का त्याग और जर्मन की शक्ति प्रसिद्ध थी, पर क्या कारण है कि वह लुप्त हो रही है। अराजकता व अश्लीलता बढ़ती जा रही है। हिंसा और आतंकवाद अपने पैर जमाता जा रहा है। पुलिस स्टेशनों की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है। आज भारत में लगभग साढे बारह हजार पुलिस स्टेशन हैं और ५५ हजार पुलिस चौकियाँ हैं। पर वारदातों की संख्या दिन दूनी रात चौगुनी होती जा रही है। आखिर क्या कारण है कि जो विदेशों में कहावत प्रचलित थी कि इस जन्म में अच्छे कर्म करेंगे तो भारत में जन्म होगा? उस भारत के संस्कार और संस्कृति आखिर अपने अस्तित्त्व को बचाने का प्रयास करते नजर आने लगे हैं।

कारणों पर दृष्टिपात करें तो हम पायेंगे पाश्चात्य सभ्यता का बढ़ता प्रभाव। टेक्नालॉजी व दूरसंचार के साधनों का दुरुपयोग आज हरजगह हो रहा है। हमारा पहनावा व खान-पान, यहाँ तक कि हमारी भाषा पर भी यह साधन अपना प्रभाव डाल रहे हैं और उसका असर हमें उसी रूप में दिखाई देगा।

इसके लिए हमें अपने आपको दूषित मानसिकता से बचाना होगा, अपने आपमें आत्म विश्वास को जमाना होगा, क्योंकि:

मंजिल उन्हीं को मिलती है, जिनके सपनों में जान होती है।
पंख होने से कुछ नहीं होता, हौसलों में उड़ान होती है॥

अपनी सुषुप्त शक्तियों को हमें जाग्रत करके कुछ रचनात्मक कदम उठाने होंगे, तभी हम फैले हुए इस सांस्कृतिक प्रदूषण को कम कर पायेंगे। पर हमारा प्रयास सिर्फ उच्चारण तक न होकर उच्च आचरण की ओर हो क्योंकि दूसरे को सुधारने से पहले स्वयं को सुधारना होगा तथा अपने जीवन में सरलता व सादगी का समावेश करना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होगा। आपका जीवनादर्श समाज के लिए अनुकरणीय होना चाहिए। एक चीनी कहावत है कि, 'सौ बार सुनने की अपेक्षा एक बार देखना अच्छा होता है और सौ बार देखने की अपेक्षा एक बार करना अच्छा होता है।'

अत: हम कुछ क्रियात्मक गतिविधियाँ अपनायें। कुछ रचनात्मक कार्य-प्रणाली हमारे जीवन में होनी चाहिये जैसे पाठशालायें खोलना तथा उनमें अपना समय देना। तभी हम सद्संस्कारों का बीजारोपण कर पायेंगे तथा बाजारीकरण की प्रवृत्ति पर अंकुश लगा पायेंगे। हम स्वयं अपने घर में अपने बच्चे के पहनावे, बोलचाल एवं जीवन-शैली को सुधारें तथा फिर हम परिवार में समाज को तथा राष्ट्र को इस सांस्कृतिक प्रदूषण से बचाकर अपनी संस्कृति को बचा पायेंगे। जैसे, माँस-निर्यात रोकने के लिए हमें गौशालाओं की जरूरत है, ठीक वैसे ही, सांस्कृतिक प्रदूषण से बचने के लिए सद्संस्कारों की जरूरत है, जो कि स्वयं परिवार, समाज व राष्ट्र तक जाकर अन्तर्राष्ट्रीय जगत में फैलेगी व पाठशालायें खोलकर हम उस दिशा में कदम-दर-कदम आगे बढ़ते जायेंगे तथा बचपन की मजबूत नींव पर भविष्य का ठोस प्रासाद खड़ा कर पायेंगे। 'जियो और जीने दो' का नारा जीवन में उतार पायेंगे, इस संकल्प के साथ :

एक दीपक तुम जलाओ, एक दीपक हम जलायें,
कुछ अँधेरा तुम हटाओ, कुछ अँधेरा हम हटायें।

कार्ड पैलेस, वर्णी कॉलोनी, सागर

श्री १००८ भगवान् अजितनाथ जी

जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरतक्षेत्र की अयोध्या नगरी के अधिपति इक्ष्वाकुवंशीय काश्यपगोत्री राजा जितशत्रु थे। उनकी महारानी का नाम विजयसेना था। उस महारानी ने माघशुक्ल दशमी के दिन अनुत्तर विमानवासी अहमिन्द्र को तीर्थंकर सुत के रूप में जन्म दिया। भगवान् ऋषभदेव के मुक्त हो जाने के अनन्तर जब पचास लाख करोड़ सागर का समय बीत चुका तब अजितनाथ भगवान् का जन्म हुआ। बहत्तर लाख पूर्व की इनकी आयु थी, चार सौ पचास धनुष की ऊँचाई थी और तपाये गए स्वर्ण के समान शरीर का वर्ण था। जब उनकी आयु का चतुर्थांश बीत चुका तब उन्हें राज्य प्राप्त हुआ। एक लाख पूर्व कम अपनी आयु के तीन भाग तथा एक पूर्वांग तक उन्होंने सुखपूर्वक राज्य किया। एक समय उन्हें बादलों में एक क्षण को उल्का दिखाई पड़ी और तत्क्षण वह विलीन हो गई। इस विनश्वरता को देखकर वैराग्य को प्राप्त भगवान् माघशुक्ल नवमी के दिन सहेतुक वन में गये और वहाँ सप्तवर्ण वृक्ष के नीचे सांयकाल के समय एक हजार राजाओं के साथ बेला का नियम लेकर दैगम्बरी दीक्षा धारण की। पारणा के दिन वे साकेत नगरी में प्रविष्ट हुए, वहाँ ब्रह्मा नामक राजा ने उन्हें आहार दान देकर पंचाश्चर्य प्राप्त किये। इसतरह छदमस्थ अवस्था में बारह वर्ष बिताकर बेला का नियम लेकर मुनिराज अजितनाथ सप्तवर्ण वृक्ष के नीचे विराजमान हुए। ध्यान की विशुद्धता से पौष शुक्ल एकादशी के दिन सांयकाल के समय घातिया कर्मों के क्षय से उन्हें केवलज्ञान प्रकट हो गया। भगवान् के समवशरण की रचना हुई जिसमें एक लाख मुनि, तीन लाख बीस हजार आर्यिकायें, तीन लाख श्रावक, पाँच लाख श्राविकायें, असंख्यात देव-देवियाँ और संख्यात तिर्यंच थे। इसतरह धर्म का उपदेश देते हुए भगवान् अजितनाथ ने समस्त आर्य क्षेत्र में विहार किया और अन्त में सम्मेदाचल पर पहुँचकर एक मास का योग निरोध कर चैत्र शुक्ल पंचमी के दिन प्रात:काल प्रतिमायोग से एकहजार मुनियों के साथ मुक्तिपद प्राप्त किया।

'शलाका पुरुष' (मुनि श्री समतासागर) से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतिशय क्षेत्र बीनाजी (बारहा)

मध्यप्रदेश के सागर जिले की देवरी तहसील में स्थित बुंदेलखंड की पावन पुनीत वसुंधरा पर सुखचैन नदी के समीप अपनी अनुपम छटा बिखेरता अतिशय क्षेत्र बीनाजी (बारहा) अब सभी के हृदयों में जगह बना चुका है। यह छोटा-सा क्षेत्र आपकी बाट निहार रहा है। जहाँ वर्तमान में आचार्यदेव ५१ पिच्छिकाओं सहित ससंघ विराजमान हैं। बीनाजी (बारहा) देवरी से ८ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। वहाँ पहुँचने के लिए देवरी से समुचित साधन हमेशा उपलब्ध रहते हैं।

यह क्षेत्र वैसे तो पिछड़ा हुआ था, लेकिन आचार्य-संघ के मंगल आशीर्वाद और यात्रियों के अनवरत पहुँचने से यह क्षेत्र प्रगति पर है। क्षेत्र-परिसर में तीन भव्य जिनालय हैं, एक मानस्तंभ है और एक चैत्यालय है। गंधकुटी-जिनालय विश्व का अद्वितीय जिनालय है। जहाँ ऊपर दर्शन हेतु चारों ओर से सीढ़ियाँ हैं, और बीच में से एक सीढ़ी बनी हुई है। जिसका जीर्णोद्धार वंशी पहाड़पुर के लाल पत्थरों से पूर्णत: की ओर है। उसी के समीप गगनचुंबी शिखरवाला १००८ भगवान् शांतिनाथ मूलनायकवाला जिनमंदिर भी लाल पत्थर से भव्यता को प्राप्त हो चुका है। यहीं अतिशयकारी प्रतिमा जी हैं। इसके मंदिर की परिक्रमा में भी आदिनाथ, शीतलनाथ आदि भगवानों की प्रतिमा जी विराजमान हैं। उसी से लगा हुआ भगवान् मल्लिनाथ और चंदप्रभ भगवान् की विशाल आकार की प्रतिमाओं से आच्छादित मामा भानेज के नाम से प्रसिद्ध जिनालय है, जहाँ का जीर्णोद्धार अभी प्रारंभ होने जा रहा है। जहाँ पर तलगृह में भगवान् अजितनाथ की अनुपम झांकी के दर्शन होते हैं। इस मंदिर में विराजमान मल्लिनाथ भगवान् जो की चूना, गुड़ आदि से निर्मित मूर्ति है, जो प्राचीन समय में महावीर के नाम से प्रसिद्ध थी। लेकिन इसके सामने विराजमान चंदप्रभ भगवान् की मूर्ति को दूसरी वेदी पर स्थापित किया तो इस भव्य प्रतिमाजी में कलश का चिन्ह देखा गया। तब से सभी मल्लिनाथ भगवान् की मूर्ति जानते हैं। सामने नगाड़ खाना है, जिसमें पार्श्वनाथ जी की प्रतिमा जी विराजमान है।

इस मंदिरजी के सामने मानस्तंभ भी अपनी आभा बिखेर रहा है। जिसके माध्यम से दूर-दूर तक भगवान् के दर्शन हो जाते हैं। परिसर में एक कुँआ, विशाल धर्मशाला, एक विद्यासागर प्रवचन हाल है। परिसर के सामने भी लगभग ५ एकड़ भूमि वर्तमान में क्रय की गई है। इसी के समीप एक बहुत बड़ी गौशाला भी है। जहाँ पशुओं की समुचित व्यवस्था के लिए गौशाला अधिकारी तत्पर तैयार रहते हैं। अतिशय क्षेत्र की स्वयं की ९२ एकड़ भूमि है, जो खेती में उपयोगी है। मंदिर परिसर में अशोक आदि के वृक्ष भी सुशोभित होते हैं। पेयजल हेतु नल की व्यवस्था है और यात्रियों के लिए भोजन, विश्राम, प्रसाधन की समुचित व्यवस्था भी क्षेत्र पर है।

बीनाजी (बारहा) में आचार्य महाराज श्री विद्यासागर जी का आगमन भी अनेकों बार हुआ है। इसी तारतम्य में इस वर्ष का पावन वर्षायोग भी आचार्य श्री विद्यासागर जी मुनि महाराज का ५१ पिच्छिकाओं सहित अतिशय क्षेत्र बीनाजी में हो रहा है। यह स्थान तप, ध्यान, चिंतन, मनन के लिए अच्छा ही नहीं वरन् बहुत अच्छा स्थान है। वर्षायोग में मंगलकलश स्थापना प्रभातकुमार जी जैन एवं परिवार मुंबई द्वारा किया गया है। आचार्यसंघ में जो साधु-परमेष्ठी विराजमान हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं :

१.परमपूज्य आचार्य विद्यासागरजी, २.मुनिश्री समयसागर जी, ३.मुनिश्री योगसागर जी, ४.मुनिश्री निर्णयसागर जी, ५.मुनिश्री प्रसादसागर जी, ६.मुनिश्री अभयसागर जी, ७.मुनिश्री प्रशस्तसागर जी, ८.मुनिश्री पुराणसागर जी, ९.मुनिश्री प्रबोधसागर जी, १०.मुनिश्री प्रणम्यसागर जी, ११.मुनिश्री प्रभातसागर जी, १२.मुनिश्री चंद्रसागर जी, १३.मुनिश्री संभवसागर जी, १४.मुनिश्री अभिनंदनसागर जी, १५.मुनिश्री सुमितसागर जी, १६.मुनिश्री पद्मसागर जी, १७.मुनिश्री पुष्पदंतसागर जी, १८.मुनिश्री श्रेयांससागर जी, १९.मुनिश्री पूज्यसागर जी, २०.मुनिश्री विमलसागर जी, २१.मुनिश्री अनंतसागर जी, २२.मुनिश्री धर्मसागर जी, २३.मुनिश्री शांतिसागर जी, २४.मुनिश्री कुंथुसागर जी, २५.मुनिश्री अरहसागर जी, २६.मुनिश्री मल्लिसागर जी, २७.मुनिश्री सुब्रतसागर जी, २८.मुनिश्री वीरसागर जी, २९.मुनिश्री क्षीरसागर जी, ३०.मुनिश्री धीरसागर जी, ३१.मुनिश्री उपसमसागर जी, ३२.मुनिश्री प्रसमसागर जी, ३३.मुनिश्री आगमसागर जी, ३४.मुनिश्री महासागर जी, ३५.मुनिश्री विराटसागर जी, ३६.मुनिश्री विशालसागर जी, ३७.मुनिश्री शैलसागर जी, ३८.मुनिश्री अचलसागर जी, ३९.मुनिश्री पुनीतसागर जी, ४०.मुनिश्री अविचलसागर जी, ४१.मुनिश्री विशदसागर जी, ४२.मुनिश्री धवलसागर जी, ४३.मुनिश्री सौम्यसागर जी, ४४.मुनिश्री अनुभवसागर जी, ४५.मुनिश्री दुर्लभसागर जी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४६.मुनिश्री विनम्रसागर जी, ४७.मुनिश्री अतुलसागर जी, ४८.मुनिश्री भावसागर जी, ४९.मुनिश्री आनंदसागर जी, ५०.मुनिश्री अगम्यसागर जी, ५१.मुनिश्री सहजसागर जी

संघ में ब्रह्मचारी भैया एवं बहिनें भी हैं। वर्षायोग में आचार्य प्रवर के हर रविवार को मंगल प्रवचन होते हैं और साधुओं के अध्ययन हेतु प्रात: काल धवला जी महाग्रंथ एवं दोपहर में आत्मानुशासन महाग्रंथ की वाचना भी हो रही है। आचार्यश्री के मंगल समोसरण में पधारकर धर्म-रस का पान कर यात्री अपने को धन्य कर रहे हैं।

अतिशय क्षेत्र बीनाजी से दर्शनीय स्थल के नाम एवं दूरी निम्नप्रकार है : पटनागंज (रहली) ४० कि.मी., पटेरियाजी (गढ़ाकोटा) ५९ कि.मी. ,सिद्धक्षेत्र कुंडलपुर (दमोह) ११० कि.मी., अतिशय क्षेत्र पिसनहारी मढ़िया जी (जबलपुर) १४८ कि.मी., भाग्योदय तीर्थ (सागर) ७३ कि.मी., अतिशय क्षेत्र नैनागिरि (दलपतपुर) १६० कि.मी., अतिशय क्षेत्र कौनीजी (पाटन) ११० कि.मी., अतिशय क्षेत्र आदिश्वर गिरि (नोहटा) ८० कि.मी., देवरी (सागर) भव्य ८ जिनालय, ८ कि.मी.

बीनाजी पहुँचमार्ग : बाम्बे-हावड़ा बाया इटारसी करेली देवरी ५० कि.मी., बाम्बे-हावड़ा बीना सागर देवरी ६५ कि.मी., हावड़ा-हावड़ा बाया बीना दमोह देवरी ७५ कि.मी.

क्षेत्र पदाधिकारी एवं संपर्क सूत्र : बीना क्षेत्रकमेटी फोन: ०७५९६- २८०००७, संजय मैक्स, इंदौर (संयोजक) मोबा. : ९४२५०५३५२१, ऋषभ मोदी (सहसंयोजक), फोन : ०७५८६-२५००२०, महेन्द्र मोदी (अध्यक्ष), फोन : ०७५८६-२५००२१, २५०३००, मो. ९४२५४५११५३, राजेन्द्र बड़कुल (उपाध्यक्ष), प्रकाश जैन (महामंत्री)-०७५८६-२५०४५१, विमल पांडे (उपमहामंत्री), फोन : ०७५८६-२५०५७७, २५०३७७, सुनील सिंघई (स्वागताध्यक्ष), फोन : ०७५८६-२५०२०५, दिनेश मोदी (कोषाध्यक्ष), फोन:०७५८६-२५०८६५, संजय जैन (शिक्षक), प्रचार एवं प्रसार मंत्री, फोन : ०७५८६-२५०७४७

बीना क्षेत्रकमेटी आप सभी को आमंत्रित करती है, आकर के धर्म लाभ लें। वर्तमान में धर्मशाला का कार्य भी प्रगति पर है। यहाँ लगभग ४० कमरे निर्मित हैं। भोजन, पानी, रहने की समुचित व्यवस्था है। अभी वर्तमान में आचार्यश्री विराजमान हैं, जिससे आवास व्यवस्था एवं आहार व्यवस्था हेतु १२० कमरे (टीनसेड) प्रथक से तैयार किए गए हैं और एक प्रवचन-हाल १२० x १६० फीट का भी तैयार किया गया है। इसी से लगा हुआ भोजनालय भी है, और व्यवसाय हेतु दुकानें आदि भी वर्तमान में प्रारंभ हैं। आप सभी आइये और धर्म-लाभ लेकर क्षेत्र की उन्नति में अमूल्य सहयोग दीजिये। आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आप अवश्य पधारेंगे।

प्रचार मंत्री, बीनाजी (बारहा)

वीर देशना

- जो दुर्बुद्धि जन, राग, द्वेष, मोह, काम, लोभ और अज्ञानता के कारण विचार नहीं करते हैं, वे अपने मस्तक पर वज्र को पटकते हैं।

  The evil minded who remains deluded by attachment, aversion, bewilderment, desire, acquisitiveness and ignorance and does not contemplate about the real purpose of existence, only hits his head against a thunderbolt.

- मूर्खता के समान दूसरा अंधकार नहीं है, ज्ञान के समान दूसरा कोई प्रकाश नहीं है, जन्म के समान कोई शत्रु नहीं हैं, तथा मोक्ष के समान अन्य कोई बन्धु नहीं है।

  There is no darkness like ignorance, no light like knowledge, no enemy like birth and no friend like final liberation.

- जो दुर्बुद्धि मनुष्य पंखहीन हंस के समान अवस्था वाले हैं, उनके सामने बुद्धिमान् मनुष्यों को भाषण नहीं करना चाहिए।

  The wise should not waste their words on the wicked who are like swans sans feathers.

- स्वयं अपना और दूसरे का उपकार करना अनुग्रह है।

  Benefaction on the self and the others is grace.

मुनिश्री अजितसागर जी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिज्ञासा - समाधान

पं. रतनलाल बैनाड़ा

प्रश्नकर्ता : रविन्द्रकुमार जैन, यमुनापार, दिल्ली ।

जिज्ञासा : वर्तमान में कुछ साधुओं ने, 'मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो' के स्थान पर मंगलाचरण में 'मंगलं पुष्पदन्ताद्यो' बोलना प्रारम्भ कर दिया है। उनका कहना है कि आचार्य कुन्दकुन्द से पहले होनेवाले तथा सर्वप्रथम ग्रन्थ लिपिबद्ध करने वाले आचार्य पुष्पदन्त महाराज थे, अत: हम उनकी वन्दना करते हैं। क्या यह उचित है ?

समाधान : मैंने जिन शास्त्रों का अध्ययन किया है, उनके अनुसार 'मंगलम् भगवान् वीरो.........' यह मंगलाचरण सर्वप्रथम 'सिरि भूवलय' नामक ग्रन्थ में, जिसके रचियता आचार्य कुमुदेन्दु हैं, और जिनका काल ९वीं शताब्दी कहा जाता है, उपलब्ध होता है। यह ग्रन्थ शब्दों में न लिखा जाकर, अंकों में लिखा हुआ है। इसमें 'मंगलम् भगवान् वीरो.........' मंगलाचरण दिया गया है और उसका तीसरा चरण 'मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो' ही दिया गया है। इस ग्रन्थ के बाद अन्य बहुत से ग्रन्थों में यह मंगलाचरण इसीतरह लिखा हुआ मिलता है। (निवेदन : विद्वानों से अनुरोध है कि यदि उपरोक्त ग्रन्थ से पूर्व, यह मंगलाचरण किसी ग्रंथ में उपलब्ध हो तो अवश्य सूचित करें)। किसी भी ग्रंथकर्ता ने या किसी भी आचार्य ने अपने ग्रन्थ में या अपने प्रवचनों में 'मंगलम् कुन्दकुन्दाद्यो' इस तृतीय चरण को आजतक परिवर्तित नहीं किया है। करें भी कैसे? आचार्य कुन्दकुन्द के महान् उपकार को दृष्टि में रखकर ही, यह मंगलाचरण रचा गया है, जो वास्तव में हर दृष्टि से उचित है। कई वर्ष पूर्व आगरा में एक मुनिराज पधारे थे, जब उनके मंगलाचरण को समाज ने समर्थन नहीं दिया, तब उन्होंने यही स्पष्टीकरण दिया था कि आचार्य पुष्पदन्त सर्वप्रथम ग्रन्थकर्ता हैं, अत: हम आचार्य कुन्दकुन्द की बजाय उनकी वन्दना करते हैं। इस विषय पर चर्चा के दौरान मैंने उनको १०-१५ विद्वानों के अभिमत की फोटोकॉपियाँ दी थीं और निवेदन किया था कि आपकी मान्यता उचित नहीं है। सारे तथ्यों की वास्तविकता देखने के बाद उन्होंने अगले दिन यह स्वीकार किया था कि वास्तव में 'मंगलं पुष्पदन्ताद्यो' बोलने का कोई औचित्य नहीं है। यहाँ भी नीचे लिखे प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि आचार्य पुष्पदन्त महाराज से पूर्व, आचार्य गुणधर महाराज ने 'कषायपाहुड़' नामक ग्रन्थ की रचना की थी । अर्थात् वर्तमान उपलब्ध आगम के अनुसार सर्वप्रथम ग्रन्थों को लिपिबद्ध करने वाले 'कषायपाहुड़' के रचियता आचार्य गुणधर महाराज थे। इस संबंध में कुछ प्रमाण नीचे दिए जाते हैं :

१. आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज द्वारा लिखित 'इतिहास के पन्ने' नामक पुस्तक के पृष्ठ १४ पर लिखा है कि 'आचार्य गुणधर महाराज ने सन् २५ ईसवी के लगभग 'कषाय पाहुड़' नामक ग्रन्थ का उद्धार एवं लिपिबद्धीकरण किया। सन् ७३ ईसवी में आचार्य धरसेन ने स्वयं 'जोणि पाहुड़' नामक ग्रन्थ की रचना की और सन् ७५ ईसवी में आचार्य पुष्पदन्त एवं भूतबलि महाराज ने 'षटखण्डागम' ग्रन्थ का उद्धार एवं संकलन किया ।

२. डा. नेमिचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य ने 'तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा' भाग-२, पृष्ठ-३० पर इसप्रकार लिखा है, 'छक्खंडागम' प्रवचनकर्ता धरसेनाचार्य से 'कषायपाहुड़' के प्रणेता गुणधराचार्य का समय लगभग २०० वर्ष पूर्व सिद्ध हो जाता है। इसप्रकार आचार्य गुणधर का समय विक्रम पूर्व प्रथम शताब्दी सिद्ध होता है।

३. 'शौरसेनी प्राकृत भाषा एवं उसके साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' लेखक डा. राजाराम ने पृष्ठ ९ पर आचार्य गुणधर कृत 'कषायपाहुड़' को ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी के आसपास का माना है। जबकि आचार्य पुष्पदन्त भूतबलि का काल निर्विवाद रूप से ईसा की प्रथम शताब्दि रहा है।

४. पं. बालचन्द जी शास्त्री ने 'षट्खण्डागम परिशीलन' पृष्ठ १४४ से १५० पर लिखा है, 'षट्खण्डागम ग्रन्थ की रचना पद्धति कषायपाहुड़ की सूत्र गाथाओं पर आधारित रही है।'

५. श्री परमानन्द जी शास्त्री ने 'जैन धर्म का प्राचीन इतिहास', द्वितीय भाग, पृष्ठ ६९ पर आचार्य गुणधर का समय ईसवी पूर्व द्वितीय शताब्दी सिद्ध किया है।

६. सिद्धांताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री ने, 'जैन साहित्य का इतिहास' प्रथम भाग, पृष्ठ २४-२५ पर आचार्य गुणधर महाराज को आचार्य धरसेन महाराज से स्पष्ट रूप से पूर्ववर्ती माना है।

७. 'जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष' भाग-१, पृष्ठ ३२८ पर क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी ने आचार्य गुणधर को प्रथम शताब्दी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के पूर्व पाद में मानते हुए, आचार्य धरसेन महाराज को उनके बहुत बाद प्रथम शताब्दी के मध्यम पाद और अन्तिम पाद का माना है। जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष भाग-२, पृष्ठ २४४ पर आचार्य गुणधर का परिचय देते हुए, इनको विक्रम पूर्व प्रथम शताब्दी का माना है। जबकि आचार्य धरसेन महाराज का परिचय देते हुए 'जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष' भाग-२, पृष्ठ ४६४ पर उनका काल ईसवी सन् ३८ से १०६ माना है, जो बहुत बाद का, सिद्ध होता है। 'जैनेन्द्र सिद्धांत कोश' भाग-१,पृष्ठ ४८६ पर क्षु. जिनेन्द्र वर्णी ने कहा है कि, 'आचार्य गुणधर महाराज,आचार्य धरसेन महाराज से, अधिक नहीं तो २-३ पीढ़ी पूर्व अवश्य होने चाहिए।'

इसके अलावा अन्य सभी इतिहास के विद्वानों ने आचार्य गुणधर महाराज को प्रथम लिपिबद्ध कर्ता मानते हुए उनको आचार्य धरसेन महाराज से पूर्ववर्ती ही माना है। किसी भी इतिहास के ज्ञाता विद्वान् ने आचार्य धरसेन महाराज को, आचार्य गुणधर महाराज से पूर्ववर्ती नहीं माना है। अत: जब आचार्य धरसेन का काल ही, आचार्य गुणधर से बाद का है। तब उनके शिष्य आचार्य पुष्पदंत का काल और उनकी रचना, आचार्य गुणधर महाराज और उनकी रचना कषायपाहुड़ से पूर्ववर्ती कैसे हो सकती है?

उपर्युक्त सभी प्रमाणों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ग्रन्थों के लिपिबद्धकर्ता सर्वप्रथम आचार्य गुणधर महाराज हुए। अत: इस आधार पर 'मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो' के स्थान पर, 'मंगलं पुष्पदन्ताद्यो' बोलना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं बैठता है। विद्वानों की विभिन्न गोष्ठियों में भी तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में भी 'मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो' का लोप करना, अनुचित एवं निन्दनीय कहा गया है। आचार्य कुन्दकुन्द का नाम इस श्लोक में से न हटाकर, इस श्लोक को पूरा बोलते हुए, अपने गुरु का स्मरण करना हर दृष्टि से उचित है और हमारे द्वारा वही प्रार्थनीय है।

प्रश्नकर्ता : राजीव जैन, अमरपाटन।

जिज्ञासा : आत्महत्या से संबंधित ६ माह का सूतक किसको और कब लगता है ?

समाधान : विभिन्न श्रावकाचारों एवं पूजा आदि की पुस्तकों में आत्महत्या का पातक ६ माह का लिखा हुआ मिलता है। इसके अलावा अन्य कुछ भी विस्तृत विवेचन नहीं मिलता। जबकि आत्महत्या से संबंधित परिस्थितियाँ अनेक प्रकार की होती हैं। अत: इस संबंध में विभिन्न विद्वत् गोष्ठियों में साधुवर्ग एवं विद्वत्वर्ग से विचार-विमर्श करने पर निम्नलिखित समाधान स्पष्ट होता है :

घटना : राजेन्द्रकुमार,देवेन्द्रकुमार दो भाई हैं। यदि राजेन्द्रकुमार दहेज न मिलने के कारण अपनी पुत्रवधू को जला देता है या उनकी पुत्रवधू , सास-ससुर से कहा-सुनी के कारण स्वयं जलकर आत्महत्या कर लेती है, तो

(अ) राजेन्द्रकुमार के परिवार को ६ माह का सूतक लगेगा। यदि देवेन्द्रकुमार उसी घर में रहते हों और उसी रसोई में भोजन करते हों तो उनको भी ६ माह का सूतक लगेगा। यदि देवेन्द्रकुमार अलग रहते हैं और उनका इस घटना से कोई संबंध नहीं है, तो उनको मात्र १२ दिन का सूतक लगेगा।

(आ) यदि राजेन्द्रकुमार की पुत्रवधू ने किसी अन्य कारण से आत्महत्या की हो, और उसमें उनके पति या सास-ससुर द्वारा कोई परेशानी आदि न की गई हो, या वह अचानक खाना बनाते समय जलकर मरण को प्राप्त हो गई हो, तो पूरे परिवार को मात्र १२ दिन का सूतक लगेगा।

(इ) यदि राजेन्द्रकुमार शेयर व्यापार में घाटा हो जाने के कारण आत्महत्या करके मर गये हों, तो पूरे परिवार को १२ दिन का सूतक लगेगा।

उपर्युक्त सूतक-पातक के संबंध में यदि किन्हीं विद्वान् महोदय को कुछ भी कहना हो, तो अवश्य लिखने की कृपा करें।

प्रश्नकर्ता : पं. आलोक जैन,ललितपुर ।

जिज्ञासा : वर्तमान में कुछ आचार्य एवं मुनि, अन्य आचार्य एवं मुनियों को हीन समझकर समाचार आदि नहीं करते हुए सामने आने से भी कतराते हैं ? क्या उनका ऐसा करना उचित है ?

समाधान : जैसी जिज्ञासा आपने की है, वैसी बहुत से साधर्मी भाइयों के चिन्तन में निरन्तर आती रहती है। वास्तव में दिगम्बरत्व को धारण करने वाले मुनि त्रिलोक वन्दनीय होते हैं। सच्चा सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा तो स्वप्न में भी सच्चे मुनियों की अवमानना नहीं करता। हम सभी 'णमो लोए सव्वसाहूणं' मंत्र कहकर उन्हीं निर्ग्रन्थ मुनियों की नित्यप्रति वंदना करते हैं। आचार्य कुन्दकुन्द ने 'दर्शन पाहुड़' में इसप्रकार कहा है -

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहजुप्पण्णं रूवं दट्ठुं जो मण्णए ण मच्छरिओ।
सो संजमपडिवण्णो मिच्छाइट्ठी हवइ एसो ॥ २४॥

अर्थ : जो स्वाभाविक नग्न रूप को देखकर उसे नहीं मानता है, उल्टा ईर्ष्याभाव रखता है,वह संयम को प्राप्त होकर भी मिथ्यादृष्टि है।

अमराण वंदियाणं रूवं दट्ठूण सीलसहियाणं।
जे गारवं करंति य सम्मत्तविवज्जिया होंति ॥ २५॥

अर्थ : जो देवों से वंदित तथा शील से सहित तीर्थंकर परम देव के (द्वारा आचरित मुनियों के नग्न)रूप को देखकर गर्व करते हैं वे सम्यक्त्व से रहित हैं॥ २५॥

उक्त आधार पर मुनियों की गरिमा और महिमा को कम नहीं आँका जा सकता। एक ओर जहाँ कुन्दकुन्द ने मुनित्व की महिमा को मंडित करते हुए उन्हें त्रिकाल वंदनीय निरूपित किया है, वहीं मुनित्व की परिभाषा भी रेखांकित की है।

जो संजमेसु सहिओ आरंभपरिग्गहेसु विरओ वि।
सो होइ वंदणीओ ससुरासुरमाणुसे लोए ॥ ११॥
(सूत्रपाहुड़)

अर्थ : जो मुनि संयम से सहित है तथा आरम्भ और परिग्रह से विरत है वही सुर-असुर और मनुष्यों से युक्त लोक में वंदनीय है॥ ११॥

जो वावीसपरीसह सहंति सत्तीसएहिं संजुत्ता।
ते होंति वंदणीया कम्मक्खयणिज्जरासाहू॥ १२॥
(सूत्रपाहुड़)

अर्थ : जो बाईस परिषह सहन करते हैं, सैकड़ों शक्तियों से सहित हैं, तथा कर्मों के क्षय और निर्जरा करने में कुशल हैं, ऐसे मुनि वंदना करने योग्य हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द ने निर्ग्रन्थ मुनि के स्वरूप का निरूपण करते हुए **चारित्रभ्रष्ट मुनियों का स्वरूप भी 'अष्ट पाहुड़' में कहा है और आदेश दिया है कि चारित्र भ्रष्ट मुनियों की छाया से भी दूर रहना चाहिए।** उन्होंने दर्शन पाहुड़ में इसप्रकार कहा है :

जे पि पडंति च तेसिं जाणंता लज्जगारवभयेण।
तेसिं पि णत्थि बोहि पावं अणुमोअमाणाणं॥ १३॥

अर्थ : जो जानते हुए भी लज्जा,गर्व और भय के कारण उन मिथ्यादृष्टियों के चरणों में पड़ते हैं उन्हें 'नमोस्तु' आदि करते हैं, पाप की अनुमोदना करने वाले उन लोगों को भी रत्नत्रय की प्राप्ति नहीं होती॥ १३॥

अस्संजदं ण वंदे वच्छविहीणोवि सो ण वंदिज्ज।
दुण्णिवि होंति समाणा एगो वि ण संजदो होदि॥ २६॥

अर्थ : असंयमी को नमस्कार नहीं करना चाहिये और जो **वस्त्र रहित होकर भी असंयमी है वह भी नमस्कार के योग्य नहीं है।** ये दोनों ही समान हैं, दोनों में एक भी, संयमी नहीं है॥ २६॥

आचार्य कुन्दकुन्द ने सूत्रपाहुड़ में इसप्रकार कहा है :

जहजायरूवसरिसो तिलतुसमित्तं ण गिहदि हत्थेसु।
जइ लेइ अप्पबहुयं तत्तो पुण जाइ णिग्गोदं॥ १८॥

अर्थ : नग्न-मुद्रा के धारक मुनि तिलतुष मात्र भी परिग्रह अपने हाथों में ग्रहण नहीं करते। **यदि थोड़ा बहुत ग्रहण करते हैं तो निगोद जाते हैं।**

आचार्य कुन्दकुन्द ने मोक्षपाहुड़ में इसप्रकार कहा है:

बाहरलिंगेण जुदो अब्भंतरलिंगरहिदपरियम्मो।
सो सगचरित्तभट्ठो मोक्खपहविणासगो साहू॥ ६१॥

अर्थ : जो साधु बाह्य लिंग से तो सहित है परन्तु जिसके शरीर का संस्कार (प्रवर्तन) आभ्यान्तर लिङ्ग से रहित है वह आत्म चारित्र से भ्रष्ट है तथा मोक्षमार्ग का नाश करने वाला है।

उपर्युक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि निर्ग्रन्थ मुनियों की पूजा और प्रतिष्ठा जितनी महत्त्वपूर्ण है,उससे ज्यादा 'मुनित्व' की सुरक्षा है। इसीकारण आचार्य ने आगमोक्त आचरण से रहित मुनियों से संपर्क न रखने का निर्देश दिया है।

आज हम देखते हैं कि बहुत सारे मुनियों में घोर शिथिलाचार व्याप्त हो रहा है। उनकी चर्या और क्रिया आगमानुकूल नहीं रह पा रही है। **ऐसे बहुत से उपकरण जैसे मोबाईल, पंखा, कूलर, एयरकंडीशनर, लेपटॉप आदि , जिन्हें परिग्रह ही नहीं, विलासिता का साधन कहा जाता है, उनका खुल्लमखुल्ला उपयोग होने लगा है। बहुत से साधु फ्लश की लैट्रिन में शौच के लिए जाने लगे हैं। आहारचर्या में भी घोर विसंगतियाँ आने लगी हैं। कुछ साधु सचित्त फलों का खुलेआम भक्षण करने लगे हैं। पत्तागोभी, धनिया,पुदीना आदि की पत्तियाँ एवं तरबूज आदि अभक्ष्य पदार्थों का आहार में लेना प्रारम्भ हो गया है। साधु संस्था में बढ़ती हुई अर्थ लिप्सा भी चिन्तनीय है। कोई साधु तो निश्चित राशि एकत्रित करके देने का आश्वासन मिलने पर ही चातुर्मास** करते हैं। **कुछ साधुओं**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ने तो पूरे देश में अपने गलत कार्यों से 'जैन धर्म' की महान् निन्दा का भी प्रसंग उपस्थित कर दिया है। अन्य भी अनेक प्रकार की विसंगतियाँ मुनि संस्था में प्रविष्ट हो चुकी हैं। गण्डा-ताबीज, टोना-टोटका जैसी आगम विरूद्ध विक्रत परम्परायें भी प्रचलित हो गईं हैं।

उपर्युक्त परिस्थितियों में **आगमानुसारी चर्या रखने वाले आचार्यों एवं मुनियों द्वारा शिथिलाचारी साधुओं से दूरी बनाए रखना कहीं से भी आगम विरूद्ध प्रतीत नहीं होता।**

अपितु मुझे तो इसमें उनके द्वारा आगम की आज्ञा का पालन और उनकी व्यवहारकुशलता ही दिखाई पड़ती है।

1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा - 282 002

नमक का संकट

पुलक गोयल

यह कोई लेख नहीं है, जो लम्बी-चौड़ी भूमिका लिखनी पड़े , यह एक चेतावनी है, जो संक्षिप्त शब्दों में लिखी जानी चाहिए और बार-बार जैनसमाज को इस संकट से अवगत कराना चाहिए। हाल ही में भारतसरकार ने आयोडीन रहित नमक की बिक्री पर रोक लगा दी है। अब भारत की किसी भी दुकान में यदि नमक बिकेगा तो वह आयोडीन युक्त ही होगा। आप सोच रहे होंगे इसमें संकट की क्या बात है? यह तो जरूरी है। भारतसरकार इस माध्यम से घेंघा रोग का सफाया करना चाहती है।

आयोडीन रहित नमक पर पाबंदी का मतलब है कि अब जैनसाधु,त्यागी,व्रती व शुद्धआहार करने वाले श्रावक वर्ग को भी सेंधानमक उपलब्ध नहीं हो सकेगा। सेंधानमक भी आयोडीन रहित होने के कारण पाबंदी के अंतर्गत आ गया है। भारतसरकार का यह निर्णय साधकवर्ग व श्रावकवर्ग पर उपसर्ग से कम नहीं है। जो सेंधानमक आज प्राय: आसानी से उपलब्ध हो जाया करता है,उसका दर्शन भी दुर्लभ हो जाएगा। इस परिस्थिति में जैनसाधु व श्रावकवर्ग नमक का त्याग कर रसपरित्याग नामक तप को आजीवन स्वीकार करने के लिए मजबूर हो जाएगा। अथवा उत्तम मार्ग को छोड़कर बाजार के आयोडीन मिश्रित कंपनी पैक नमक का प्रयोग प्रारंभ कर शिथिलाचार का कलंक स्वीकारना पड़ेगा।

यह संकट इंगित कर रहा है, आगम में वर्णित पंचमकाल के अंत वाली कथा पर जब राजा/शासक कर के रूप में अंतिम मुनिराज के हाथ से प्रथम ग्रास ही छीन लेगा और फिर चतुर्विध संघ के साथ मुनि भी समाधिमरण स्वीकारेंगे तत्पश्चात् राजा, अग्नि आदि का नाश हो जाएगा और धर्म विहीन छठा काल आ जाएगा।

अनजाने में उठाया गया भारतसरकार का यह कदम जैनधर्म की परम्पराओं एवं संस्कृति पर बाधा उत्पन्न कर रहा है। यह कदम जैनसमाज की धार्मिक स्वतंत्रता का हनन करता हुआ गंभीर मामला बन जाएगा। इस पाबंदी के विरोध में श्री गोविंदाचार्य ने देशव्यापी आंदोलन चलाने का आह्वान किया है। जैनसमाज की तथाकथित प्रतिनिधि संस्थाओं/सभाओं/समितिओं को भी इस प्रकरण पर जरूरी प्रयास करना चाहिए। साधकवर्ग तो इसे उपसर्ग मानकर सहन कर लेगा परंतु मुनिभक्त वर्ग भी मौन रहे यह उचित नहीं।

उल्लेखनीय है कि पूर्व में भी जैनसमाज के सम्मिलित प्रयासों को सफलता प्राप्त हुई है। कुछ माह पूर्व जब रेलविभाग ने रेलयात्रा के दौरान घर से लाई हुई खाद्य सामग्री के प्रयोग पर रोक लगाई थी, तब रेलविभाग को जैनसमाज का आंदोलन सहना पड़ा,फलस्वरूप रोक हटा ली गई।

ऐसे ही कुछ सम्मिलित प्रयास जैन मुनिभक्त समाज को पुन: करना चाहिए। हमें राजनीतिक स्तर पर उपर्युक्त बात पहुँचाने के व्यक्तिगत तथा संस्थागत कार्य करने चाहिए। देश की सर्वोच्च न्यायपालिका में उपर्युक्त प्रकरण पर एक जनहित याचिका दाखिल करानी चाहिए। अनेक सम्मेलनों को आयोजित कर आयोडीन की अनिवार्यता व आवश्यकता पर चर्चा करवाकर इसे देशव्यापी बहस का मुद्दा बनाकर इस पाबंदी को रद्द कराने का प्रयास किया जाना चाहिए।

अन्यथा आगे आने वाले समय में सच्चे जैनमुनियों/साधकों के दर्शन भी दुर्लभ हो जावेंगे। मुनिभक्त जैनसमाज के लिए यह एक चेतावनी है।

श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान, सांगानेर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनम् जयतु शासनम्

मुर्शिदाबाद

॥ श्री जिनाय नमः ॥

मुर्शिदाबाद जिला दि० जैन समाज (प० बं०)

अध्यक्ष कार्यालय : स्टेशन रोड, पो० लालगोला, जिला मुर्शिदाबाद-७४२ १४८
(Regd. No. S/1L/30187 under West Bengal Societies Registration Act XXVI of 1961)

संरक्षक			
मोहनलाल अजमेरा, धुलियान	चंदनमल बड़जात्या, जियागंज	मदनलाल काला, खगड़ा	कपूरचन्द ठोल्या, जंगीपुर
रतनलाल सेठी, अड़ंगाबाद	कपूरचंद सेठी, सन्मतिनगर	सुवालाल अजमेरा, मिर्जापुर	दानमल गंगवाल, लालगोला

अध्यक्ष	उपाध्यक्ष	उपाध्यक्ष	संयुक्तमंत्री
भागचन्द छाबड़ा, लालगोला (03483) 274267, 94340 23822	शान्तिचन्द छाबड़ा, जियागंज (03483) 255227, 97325 09657	अजितकुमार अजमेरा, धुलियान (03485) 265153, 94340 14762	प्रकाशचन्द काला, धुलियान (03485) 265511, 94341 32233
महामंत्री विजयकुमार बड़जात्या, धुलियान (03485) 252252, 94340 20569	ताराचन्द सेठी, अड़ंगाबाद (03485) 262778, 97325 68669	अशोककुमार काला, बहरमपुर (03482) 252707, 94340 00947	विरेन्द्रकुमार ठोल्या, खगड़ा (03482) 251620, 97325 04503

सेवामें

श्री रतनलालजी बैनाड़ा

आगरा

दिनांक १५.०८.२००५

मान्यवर महोदय,

सादर जय जिनेन्द्र।

बड़े ही अफसोस एवं दुःख के साथ लिखना पड़ रहा है कि हाल के कुछ वर्षों से कुछ महाव्रतियों द्वारा असामाजिक आचरण किया जा रहा है। गिरडीह धर्मशाला व मधुवन (शिखरजी) में देखा गया है कि एक दि. साधु हाथ में थैला लेकर बाजार में सब्जी,फल आदि माँगकर भिक्षावृत्ति पर उतर आये हैं। कोई साधु दर्शन करने आये श्रावकों से अपने आहार की व्यवस्था में दान पुण्य करने को प्रेरित कर रहे हैं। अकेली महिला के साथ विचरण, एकांत में वार्तालाप, घनिष्ठता आदि से जैन-जैनेतर समाज में इनके आचरणों पर प्रश्न किये जा रहे हैं। अभी हाल में ही आचार्य सम्मानसागर जी महाराज आसाम से विहार कर कानकी, बारसोई पहुँचकर पश्चिम बंगाल प्रान्त के मुर्शिदाबाद जिले में आने के लिए स्थानीय समाज के पदाधिकारियों द्वारा हमें सूचना भिजवाई थी। हमलोगों ने उनकी चर्याओं के बारे में अधिकृत सूत्रों से सुना था। उनके साथ केवल एक महिला नाम चन्दाबाई रहती है । सफर में गाड़ी चलाती है, आहार की व्यवस्था करती है तथा महाराजजी के आदेशानुसार चन्दा दान भी संग्रह करती है। मुर्शिदाबाद जिला दि. जैन समाज की कार्यकारिणी सभा में उपस्थित सभी सभासदों ने एकमत होकर निर्णय दिया था कि ऐसे महाराजजी जिनके आचरणों पर प्रश्न चिन्ह हैं हम उन्हें सैद्धांतिक और मानसिक रूप से ग्रहण करने में असमर्थ हैं तथा इसप्रकार की गलत क्रियाओं वाले साधु को मुनि मानने में भी परहेज है ।

हमलोग पूर्वांचल वासी व्यापार के सिलसिले में यहाँ के अधिवासी हैं। देश,काल,समय,परिस्थिति को ध्यान में रखकर प्रशासन, प्रभावशाली व्यक्तियों का सहारा लेना पड़ता है। स्थानीय लोग दि. मुनियों के सर्वसाधारण में विचरण पर टीका-टिप्पणी व तर्क-वितर्क करते हुए हमेशा देखे जाते हैं। हमलोग अल्पसंख्यक हैं या कहें कि अणुसंख्यक हैं। स्थानीय लोगों से सद्भाव मित्रता का व्यवहार कर धर्मपालन में अनुरक्त रहने का प्रयास करते हैं। हमारे क्षेत्र में आने वाले महाव्रती हमारे आदर्श होने चाहिये ताकि उनसे प्रेरणा लेते हुए समाज का उद्धार व अपनी आत्मा का कल्याण कर सकें। साथ-साथ जैनधर्म की प्रभावना इधर बढ़ सके।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमलोगों को उपर्युक्त वर्णित विषयों पर गहन चिन्तन करना होगा। महासभा, महासमितियाँ, संगठन, बुद्धिजीवी वर्ग इस विषय पर मानस तैयार करें, तथा पूज्य आचार्यों के सान्निध्य में संगोष्ठी कर चर्चा करें फिर निर्णय देवें। यही हमारी विनती है ।

निवेदक

(भागचन्द छाबड़ा)

अध्यक्ष

सम्पादकीय टिप्पणी :

आपकी चिन्ता उचित है और उपर्युक्त प्रकार का आचरण करनेवाले कुमुनियों को मुनि न मानने की आपकी दृष्टि आगमानुकूल है। आचार्य कुन्दकुन्द का आदेश है, 'असंजदं ण वन्दे।' ऐसे कुमुनियों की वन्दना न की जाय, यही उनकी बाढ़ को रोकने का एकमात्र उपाय है।

रतनचन्द्र जैन

श्री १००८ भगवान् संभवनाथ जी

जम्बूद्वीप संबंधी भरतक्षेत्र की श्रावस्ती नगरी में महाराजा दृढ़ राज्य करते थे। सुषेणा उनकी महारानी का नाम था। कार्तिक शुक्ल पूर्णमासी के दिन उस महारानी ने प्रथम ग्रैवेयक के सुदर्शन विमानवासी अहमिन्द्र को तीर्थंकर सुत के रूप में जन्म दिया। भगवान् अजितनाथ के मुक्त हो जाने के अनन्तर जब तीस लाख करोड़ सागर का समय बीत चुका तब संभवनाथ भगवान् का जन्म हुआ। साठ लाख पूर्व की उनकी आयु थी, चार सौ धनुष ऊँचा शरीर था। जब उनकी आयु का एक चौथाई भाग बीत चुका तब उन्हें राज्य पद प्राप्त हुआ। इसप्रकार सुखोपभोग करते हुए जब चवालीस लाख पूर्व और चार पूर्वांग व्यतीत हो चुके तब किसी एक दिन प्रभु अपने महल की छत पर बैठे हुए थे। तभी आसमान में दिखाई देने वाले मेघ एकाएक न जाने कहाँ विलीन हो गये। विनष्ट होते इस दृश्य को देखकर आत्म-ज्ञान प्रकट होते ही वे उसी समय विरक्त हो गये। भगवान् ने अपने पुत्र को राज्य देकर मगसिर शुक्ला पन्द्रस को सहेतुक वन में सांयकाल के समय एक हजार राजाओं के साथ संयम धारण कर लिया। पारणा के दिन भगवान् ने श्रावस्ती नगरी में प्रवेश किया। वहाँ सुरेन्द्रदत्त नामक राजा ने आहार दान देकर पञ्चाश्चर्य प्राप्त किये। तपश्चरण करते हुए चौदह वर्ष तक भगवान् छद्मस्थ अवस्था में रहे। तदनन्तर अपने ही दीक्षावन में पहुँचकर शाल्मली वृक्ष के नीचे कार्तिक कृष्ण चतुर्थी के दिन बेला का नियम लेकर ध्यानारूढ़ हुए और घातिया कर्मों का नाशकर अनन्त चतुष्टय को प्राप्त हुए। भगवान् के समवशरण की रचना हुई। जिसमें दो लाख मुनि, तीन लाख बीस हजार आर्यिकायें, तीन लाख श्रावक, पाँच लाख श्राविकायें, असंख्यात देव-देवियाँ और संख्यात तिर्यंच थे। इसप्रकार दिव्य धर्मोपदेश देते हुए भगवान् ने समस्त आर्य देशों में विहार किया। अन्त में जब आयु का एक माह अवशिष्ट रह गया तब सम्मेदाचल पहुँचकर उन्होंने एक हजार मुनियों के साथ प्रतिमायोग धारण किया। तदनन्तर चैत्र शुक्ल षष्ठी के दिन प्रातःकाल के समय एक हजार मुनियों के साथ मोक्ष प्राप्त किया।

'शलाका पुरुष' (मुनि श्री समतासागर जी) से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाचार

रांची में विद्यासागर कम्प्यूटर एजुकेयर का शुभारंभ

आचार्य श्री १०८ श्री विद्यासागर जी महाराज के यशस्वी एवं आज्ञानुवर्ती शिष्य पूज्य मुनिश्री प्रमाणसागर जी की प्रेरणा के फलस्वरूप समाज के अध्यक्ष धर्मचंद जी रारा एवं मंत्री श्री प्रदीप जी बाकलीवाल ने समस्त समाज के साथ निर्णय लेकर विद्यासागर कम्प्यूटर एजुकेयर प्रारंभ करने की योजना बनायी। इस परियोजना का संयोजक श्री विजय जैन पांड्या एवं श्री गौतम काला को मनोनीत किया गया। इस केन्द्र के सभी कोर्स एन आई आई टी के पैटर्न पर आधारित एवं सार्टिफाइड हैं। समाज के नवयुवक एवं नवयुवतियाँ, पुरुष एवं महिलायें इस केन्द्र पर कम्प्यूटर शिक्षा ग्रहण करने में गहरी रुचि ले रहे हैं।

मुनिश्री की प्रेरणा से दि. जैन पंचायत रांची ने मिलकर फैसला लिया है कि समाज में रात्रि में विवाह-संस्कार एवं सामूहिक भोज कार्यक्रम संपन्न नहीं किये जायेंगे।

मुनिश्री की प्रेरणा से समाज अनेक अन्य योजनाओं पर भी गम्भीरता से विचार कर रही है, जिनमें समाज द्वारा पूर्व से संचालित जैन चिकित्सालय एवं लाइब्रेरी का विस्तारीकरण करके आधुनिक बनाना शामिल है। रांची एक जाना-माना शिक्षाकेन्द्र है, इस कारण बाहर से आकर रांची में रहकर शिक्षा प्राप्त करनेवाली जैन लड़कियों के लिए एक गर्ल्स होस्टल आरंभ करने की योजना पर भी विचार चल रहा है। मुनिश्री प्रमाणसागर जी महाराज का रांची प्रवास समाज को एक वरदान साबित हुआ है।

पं. पंकज जैन 'ललित', रांची

शिरगुप्पी के आ. विद्यासागर अन्नपूर्णा केंद्र द्वारा पांच-हजार बाढ़-ग्रस्तों को आधार

गत १०० साल से न सुना, न देखा हुआ भयानक पूरग्रस्त कर्नाटक के बेलगाम जिला और महाराष्ट्र के सांगली और कोल्हापूर जिले के तटवर्ती लोगों को कृष्णा नदी के प्रवाह का कडुवा अनुभव हुआ। फसल, जान-माल का नुकसान और जानवरों की तो खूब बरबादी हुई। दो दिनों के अंदर ही अंदर नदी का प्रवाह खेतों, तालाबों, गांवों की गलियों में और घरों में भर गया। पानी की लीला बड़ी ही अजीब है। इसे देखकर लोगों के होश उड़ गए। नदी-तट के गाँवों के लोग अपने और जानवरों के बचाव के लिए असहाय बन गए। महाराष्ट्र राज्य के खिद्रापूर, राजापूर और कर्नाटक के जुगुल, शाहपुर, मंगावती, मांजरी, मोलवाड़, इंगली आदि गांवों के लोग अपने बचाव के लिए शिरगुप्पी गाँव के स्कूलों में आश्रय पाने के लिए हजारों-हजारों लोग भाग आये। यह दृश्य बड़ा ही दुखद दृश्य था। प्रकृति का खेल बड़ा ही अजीब था। देखते-देखते ही कृष्णा मैया का प्रवाह एक सागर के रूप में बदल गया, जंगली जानवरों और पक्षियों का हाल तो कौन पूछे?

जनता की यह दुर्दशा, असहायता और उनकी दुखद परेशानी देखकर शिरगुप्पी गाँव में चातुर्मास आचरण करनेवाले मुनि श्री १०८ अक्षयसागरजी और मुनिश्री १०८ नमिसागर जी महाराज ने अपने प्रवचन के समय शिरगुप्पी गाँववासियों से प्रवाह-पीड़ित और निर्गतिक लोगों के अक्षय और उनके खाने-पीने की व्यवस्था के लिए चुनौती दी। मुनिमहाराज जी की चुनौती सुनकर लोगों ने सहर्ष स्वागत किया। तत्क्षण ही १०० कार्यकर्ता सेवाकार्य में निरत हो गये। प्रवचन सुनने में व्यस्त लोगों के मनपर मुनिश्री अक्षयसागरजी की वाणी का परिणाम होकर उनके मन में धर्म जाग उठा। केवल १५-२० मिनट में ही ५०,०००/- रूपयों की धनराशि दान के रूप में जमा हो गयी। बूँद-बूँद से सागर बनता है और झरे-झरे से पहाड़। दानी लोगों के इस दान से "श्री १०८ आचार्य विद्यासागर अन्नपूर्णा सेवा केन्द्र" शुरू हुआ। शिरगुप्पी गांव के समस्त दिगंबर जैन लोग वीर सेवादल, विद्यासागर युवक मंडल, महिला मंडल के १०० कार्यकर्ता लोग ८-१० दिनों से रात और दिन पूरग्रस्त लोगों के खाने-पीने की और आश्रय की व्यवस्था अरिहंत शिक्षण संस्था, सिद्धेश्वर विद्यालय, विद्यानंद प्राथमिक स्कूल और सरकारी प्राथमिक स्कूलों में की।

नदी के पूरग्रस्त में फंसे हुए गाँवों के जानवरों के लिए गाँव के लोग अपने खेतों से गन्नों की फसल काटकर बाढ़ में ही अपने सरपर चारा लेकर नाव में डालकर जुगुल, शाहपुर, मंगावती के जानवरों की जान बचायी। चारा देकर शिरगुप्पी गाँव के लोगों ने मानवता धर्म निभाया।

बाढ़ में फंसे जानवरों के चारे के बारे में मुनिजी ने अपने प्रवचन में कहा, यह बात सुनकर एक महिला के मन में धर्म जाग उठा। तत्क्षण ही उस महिला ने अपने गले में पहना हुआ १० ग्राम का सोने का हार निकालकर देते हुए कहा कि, 'इसे बेचकर भूखे जानवरों को खाद्य खिलाओ,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेकिन मेरा नाम मत बताओ।' महिला के मन में मानवता जाग उठने का कारण मुनिश्री के प्रवचन का प्रभाव था।

परमपूज्य श्री अक्षयसागर मुनिमहाराजजी ने बाढ़ग्रस्त लोगों से मुलाकात की और बाढ़ग्रस्त दु:खी लोगों को सांत्वना दी और धर्म के आचरण से अपने दु:ख को भूलकर जीवन में आगे आनेवाले दिनों में हिम्मतवान् बनकर रहने की बात कही। अन्नपूर्णा सेवाकेंद्र में कोई भी खाना न मिलने से भूखा रहा तो मैं भी उस दिन उपवास का व्रत रखूँगा। यह उपदेश सुनकर बाढ़ग्रस्त लोग अपने मनोधर्म को जागृत बनाकर मन की शांति पाये।

किशनगढ़ में महती धर्म-प्रभावना

परम पूज्यनीया आर्यिका गणिनी बालयोगिनी १०५ श्री स्याद्वादमती माताजी के पावन मंगलमयी चातुर्मास में किशनगढ़ नगर में महती धर्म-प्रभावना हो रही है। विविध प्रकार के कार्यक्रम प्रतिदिन आयोजित किये जा रहे हैं। जैनधर्म के २३ वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ भगवान् का श्रावण सुदी ७ को मोक्षकल्याणक बड़े धूमधाम से विधान पूजनपूर्वक आयोजित किया गया।

पारसमल बाकलीवाल

श्री सिद्धचक्र महामंडल विधान एवं विश्वशांति महायज्ञ सानन्द संपन्न

कोलकाता, श्री दिगम्बर जैन समाज कोलकाता द्वारा आयोजित श्री सिद्धचक्र महामंडल विधान एवं विश्वशांति महायज्ञ सानंद सम्पन्न हुआ। इस विधान का आयोजन दिनांक १४.७.२००५ से २२.७.२००५ अष्टाह्निका पर्व पर श्री दिगम्बर जैन नया मन्दिर जी में किया गया था।

समीर कुमार जैन

गोवा राज्य के प्रथम दिगम्बर जैनमंदिर का निर्माण कार्य प्रगति पर

अरब सागर के तट पर स्थित भारतवर्ष की स्वर्णभूमि एवं सुप्रसिद्ध पर्यटन क्षेत्र गोवा राज्य के व्यवसायिक नगर मडगांव में निर्मित होनेवाले प्रथम दिगम्बर जैनमंदिर का निर्माणकार्य प्रतिष्ठाचार्य, मंदिरशिल्प, वास्तुशिल्पशास्त्री पं. श्रीमान् कान्तिलालजी पगारिया निवासी सागवाड़ा (राजस्थान) के निर्देशन में प्रगति पर है।

मंदिर निर्माण समिति के अध्यक्ष भारत दोशी ने बताया कि मंदिर में मूलनायक के रूप में देवाधिदेव आदिनाथ भगवान् की प्रतिमा स्थापित की जायेगी।

२००-२०० फिट के वर्गाकार परिक्षेत्र के मध्य में शिल्प-गणित के अनुसार लाल पत्थरों के भव्य शिखरबंद मंदिर का निर्माण कराया जा रहा है।

मंदिर-परिसर में मानस्तम्भ का निर्माण भी किया जायेगा। साथ ही यात्रियों के ठहरने हेतु सुविधायुक्त एक विशाल धर्मशाला एवं भोजनशाला का निर्माण भी किया जायेगा।

मंदिर-निर्माण हेतु शिलान्यास एवं भूमिपूजन प्रतिष्ठाचार्य कान्तिलालजी पगारिया के तत्वाधान में ३० जनवरी २००५ को सम्पन्न हुआ था। आठ माह के अल्पकाल में ही मंदिर अपने निर्माण के अन्तिम चरण में है।

निर्माणसमिति के सचिव विजय पाटिल एवं कोषाध्यक्ष महावीर जगदेव ने बताया कि मंदिरनिर्माण हेतु पूरे देश की जैनसमाज से आर्थिक सहयोग प्राप्त हो रहा है।

मंदिरसम्बन्धी जानकारी हेतु सम्पर्कसूत्र : भारत रामचन्द्र दोशी, म.नं. २३३, मालभाठ, पो. मडगांव, पिन ४०३६०१ (गोवा)।

सन्तनिवास का शिलान्यास सम्पन्न

दसवें तीर्थंकर शीतलनाथ भगवान के गर्भ, जन्म, तप कल्याणकों से पवित्र विदिशा नगर में आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के मंगल आशीर्वाद एवं उनके परमशिष्य मुनिश्री अजितसागर जी महाराज एवं ऐलक श्री निर्भयसागर जी महाराज के सान्निध्य में शीतल विहार न्यास द्वारा भव्य समोसरण मन्दिर, सन्तनिवास एवं विशाल धर्मशाला का निर्माणकार्य प्रारम्भ किया जाना है। प्रथम चरण में भव्य एवं विशाल सन्तनिवास का निर्माण का शिलान्यास ब्र. श्री प्रदीप भैया अशोकनगर के मार्गदर्शन में दि. ११ अगस्त ०५ को सम्पन्न हुआ।

विदिशा म.प्र. में अ.भा.दि. जैन पाठशाला शिक्षक प्रशिक्षण एवं संगोष्ठी समारोह सम्पन्न

परमपूज्य आचार्य गुरुवर विद्यासागर जी महाराज के परम प्रभावक शिष्य परमपूज्य मुनिश्री अजितसागर जी महाराज एवं पूज्य ऐलक श्री निर्भयसागर जी महाराज के पावन सान्निध्य में दसवें तीर्थंकर भगवान् शीतलनाथ प्रभु के गर्भ-जन्म-तप कल्याणकों से पवित्र विदिशा (भद्दलपुर) नगर में दिनांक 25 अगस्त से 28 अगस्त तक विभिन्न धार्मिक आयोजनों के साथ सम्पन्न हुआ। कार्यक्रम का प्रारंभ म.प्र.शासन के खनिज मंत्री एवं विदिशा जिले के प्रभारी मंत्री श्री लक्ष्मीकांत शर्मा के मुख्य आतिथ्य में हुआ। मुनि श्री अजितसागर जी महाराज द्वारा संकलित एवं पद्यानुवाद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृति 'तीर्थंकरस्तवन' एवं श्री निर्भयसागर जी महाराज की कृति 'वैज्ञानिकों की दृष्टि में उपवास' का विमोचन स्थानीय विद्वान् पं. सागरमल जी जैन द्वारा किया गया ।

इस संगोष्ठी में मध्यप्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र , उत्तरप्रदेश से करीब 100 पाठशालाओं के 500 शिक्षकों ने सहभागिता देकर प्रशिक्षण प्राप्त किया। चार दिवसीय शिक्षक प्रशिक्षण एवं संगोष्ठी में कुल आठ सत्रों में निम्न विषयों पर प्रशिक्षण दिया गया । वर्तमान में जैन पाठशालाओं की आवश्यकता क्यों ? पाठशालाओं में विद्यार्थियों को कैसे बुलायें और पढ़ायें? पाठशालाओं में अभिभावकों की भूमिका क्या हो? पाठशालाओं को सुचारु रूप से कैसे चलायें ? आधुनिक तरीकों से हम कैसे धार्मिक शिक्षा दें ? समाज एवं शिक्षकों की भूमिका कैसी हो ?

उक्त विषयों पर पूज्य महाराज जी एवं ऐलक जी के साथ श्री डॉ. सुरेन्द्र भारती बुरहानपुर, डॉ. शीतलचंद जी जयपुर, डॉ. कमलेश जी बनारस, डॉ. रतनचंद जी भोपाल, ब्र. भैया प्रदीप जी अशोकनगर, ब्र.दीदी पुष्पा जी, डॉ. अनेकान्त जी दिल्ली, पं. वीरेन्द्रशास्त्री नागपुर, सुनील शास्त्री, सांगानेर, डॉ. आराधना जैन गंजबासौदा आदि विद्वानों ने प्रशिक्षण प्रदान किया । कार्यक्रम का संयोजन डॉ. सुरेन्द्र भारती बुरहानपुर द्वारा किया गया। ज्ञात हो कि इस संगोष्ठी का द्वितीय बार आयोजन हो रहा है। प्रथम आयोजन मुनि श्री के सान्निध्य में गतवर्ष जेसीनगर में सम्पन्न हुआ था ।

डॉ. पंकज जैन विदिशा

पण्डितरत्न मूलचन्द जी लुहाड़िया द्वारा धर्मप्रभावना

परमपूज्य सन्तशिरोमणि आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी महाराज के पटुशिष्य पण्डितरत्न मूलचन्द जी लुहाड़िया के पावन सान्निध्य में दशलक्षण पर्व समारोह बड़े धूमधाम एवं आनन्दपूर्वक उत्साह के साथ श्री दिगम्बर जैन नया मंदिर जी में मनाया गया।

दशलक्षण पर्व के दौरान प्रत्येक दिन प्रातः ६ बजे श्री दिगम्बर जैन युवक समिति के तत्त्वावधान में गाजे-बाजे के साथ सामूहिक पूजन सम्पन्न हुआ। तत्पश्चात् प्रातः ८.१५ बजे से परम श्रद्धेय श्री मूलचन्द जी लुहाड़िया के द्वारा तत्त्वार्थसूत्र की व्याख्या एवं वाचन किया गया। प्रत्येक दिन सांयकाल श्री दिगम्बर जैन युवक समिति के तत्त्वावधान में भारी संख्या में आवाल-वृद्ध साधर्मी जनों ने गाजे-बाजे के साथ आरती की। रात्रि ८ बजे से ९ बजे तक दशधर्मों पर तत्त्व-मर्मज्ञ मूलचन्द जी लुहाड़िया के सारगर्भित,ओजस्वीपूर्ण एवं तार्किक प्रवचन होते थे। चारों अनुयोगों के माध्यम से व्यवहार और निश्चय का विश्लेषण आपके द्वारा अभूतपूर्व होता था। परमआदरणीय ब्रह्मचारिणी पुष्पा दीदी का भी एक दिन तार्किक एवं ओजस्वी प्रवचन हुआ।

श्रवणकुमार जैन, कोलकाता

डॉ. सुरेन्द्र जैन जबलपुर कॉलेज में आमंत्रित

बुरहानपुर, स्थानीय सेवा सदन महाविद्यालय के हिन्दी विभाग में पदस्थ वरिष्ठ सहा. प्राध्यापक डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन को दिनांक १६ सितम्बर, २००५ को डी.एन.जैन महाविद्यालय,जबलपुर में मुख्यअतिथि के रूप में आमंत्रित किया गया, जहाँ उन्होंने महाविद्यालय के हिन्दी विभाग द्वारा आयोजित हिन्दी सप्ताह के अन्तर्गत आयोजित वाद-विवाद, निबंध, कहानीलेखन, शुद्ध हिन्दी आदि प्रतियोगिताओं के सफल विजेताओं को पुरस्कृत किया।

डॉ. वीरेन्द्र स्वर्णकार, जबलपुर

पार्श्वज्योति मंच के विद्वानों द्वारा धर्मप्रभावना

बुरहानपुर, स्थानीय पार्श्वज्योति मंच संस्था की ओर से दिगम्बर जैन धर्मानुयायियों के प्रमुख धार्मिक उत्सव पर्युषण पर्व पर देश के विभिन्न स्थानों पर जैनसमाज के आमंत्रण पर विद्वानों को धार्मिक तत्त्वोपदेश, संस्कार एवं शाकाहार के प्रचार-प्रसार हेतु भेजा गया।

इन सभी विद्वानों ने आचार्य उमास्वामी विरचित तत्त्वार्थसूत्र एवं उत्तमक्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य आदि धर्म के विविध लक्षणों को समाज के मध्य प्रवचन के माध्यम से प्रतिपादित करते हुये नैतिक एवं संस्कारित जीवन जीने की आवश्यकता प्रतिपादित की।

डॉ. सुरेन्द्र जैन

सूचना

सभी सम्माननीय सदस्यों को सूचित किया जाता है कि यदि आपका पता बदल गया हो या पते में कोई कमी हो तो पत्र द्वारा प्रकाशक/कार्यालय को अवश्य सूचित करें, ताकि 'जिनभाषित' आपको सही समय पर प्राप्त होती रहे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शतायु युगपुरुष वर्तमान के 'भामाशाह' श्री रतनलाल जी पाटनी का निधन

जब तुम आए जगत में, जग हँसा तुम रोय।
ऐसी करनी कर चले, तुम हँसो जग रोय।

देश के प्रमुख मार्बल औद्योगिक घराने आर.के. मार्बल परिवार के पितामह श्री रतनलाल जी पाटनी का स्वर्गवास भाद्रपद शुक्ला सप्तमी को प्रातः ९ बजे हुआ। संयोग की बात यह रही कि ठीक आज ही के दिन १०६ वर्ष पूर्व भाद्रपद शुक्ला सप्तमी को आपका जन्म हुआ था।

श्री रतनलाल जी पाटनी सम्पूर्ण जैन समाज में 'बाबा' के नाम से विख्यात थे। बाबा बाल ब्रह्मचारी थे। अपनी वंशावली चलाने के लिये अपने ज्येष्ठ भ्राता श्री भंवरलाल जी पाटनी के पुत्र श्री कंवरलाल जी पाटनी को अपना दत्तक पुत्र बनाया। श्री कंवरलाल जी पाटनी की सात सन्तानें हैं। चार पुत्रियाँ (श्रीमती अनुपमा, श्रीमती रानू, श्रीमती संगीता, श्रीमती नीलिमा) तथा तीन पुत्र (श्री अशोक पाटनी, श्री सुरेश पाटनी, श्री विमल पाटनी)।

करीब १५ वर्ष पूर्व आ. श्री विद्यासागर जी महाराज से 'बाबा' ने दो प्रतिमायें ग्रहण कर सदगृहस्थ श्रावक के व्रतों को अंगीकार किया।

निजी जिन्दगी हो या व्यापार उनका कभी किसी से कोई विवाद नहीं हुआ। लेन-देन में कैसी भी असहमति हो, आमने-सामने बैठकर समस्या सुलझाई है। यही सोच उन्होंने अपने पुत्र-पौत्रों को भी वसीयत में सौंपी है। यही नहीं, वे खुद तो मुक्त हस्त से दान करते ही थे, पर अपने पुत्र-पौत्रों को भी उन्होंने यही सिखाया है। और आज पाटनी परिवार दान के क्षेत्र में, जैन समाज में सर्वोत्कृष्ट पदवी वर्तमान के 'भामाशाह' के रूप में सुविख्यात है। सीकर चातुर्मास में पू. मुनिपुंगव श्री सुधासागर जी महाराज की साक्षी में जैन जैनेतरों की अपार उपस्थिति में आपको 'जैन गौरव' की उपाधि से अलंकृत किया गया था।

कर्मयोगी 'बाबा' की अन्तिम यात्रा अभूतपूर्व एवं ऐतिहासिक रही। उनकी पार्थिव देह को बाकायदा ध्यानावस्था वाली मुद्रा में चन्दन की लकड़ियों से बनी विशेष सुसज्जित पालकी में विराजित किया गया। उनके अंतिम दर्शन के लिये जन सैलाब उमड़ पड़ा। अंतिम यात्रा में शामिल हुए परिजनों व हजारों लोगों ने उन्हें पुष्पहार अर्पित कर सजल नेत्रों से विदाई दी। 'बाबा' की अंतिम यात्रा धूम-धड़ाके से गाजे-बाजे के बीच जुलूस के रूप में निकली। जिसमें आगे ही आगे ऊँटों व हाथियों से गुलाल की वर्षा की जा रही थी। जिससे सभी लोग व पूरा मार्ग रंगीनियों से सराबोर नजर आया। एक किलोमीटर से भी अधिक लम्बे जुलूस के कारण मदनगंज के मुख्य बाजारों में वाहनों की ही नहीं वरन् पैदल राहगीरों की आवाजाही भी पूर्णतया बाधित रही। यात्रा मार्ग के दोनों किनारों पर खड़े नर-नारियों ने भी पुष्पवर्षा की तथा पालकी में ध्यानावस्था वाली मुद्रा में बैठे हुए बाबा के तेजस्वी स्वरूप को देखकर श्रद्धा से शीश नवाया। इस दौरान चाँदी के सिक्कों की भी बौछार की गई।

उनके अंतिम संस्कार से पूर्व पालकी को कंधा देने हेतु लोगों में होड़ मची रही। अन्त में मुक्तिधाम में बाबा की नश्वरदेह को चन्दन की लकड़ियों पर पद्मासन मुद्रा में विराजमान किया गया। मुक्तिधाम परिसर में बाबा की नश्वरदेह को अग्नि समर्पित करने के समय बडी संख्या में प्रमुख राजनेता, प्रशासनिक अधिकारी, हजारों जन सामान्य एवं गणमान्यजनों ने श्रद्धांजलि दी। युग पुरुष रतनलाल जी पाटनी के निधन पर शोकस्वरूप मार्बल एरिया में उद्यमियों व व्यवसायियों ने तथा ट्रांसपोटर्स ने दोपहर दो बजे तक अपना कारोबार बंद रखा। वहीं स्थानीय जैन जैनेतर समाज के लोगों ने भी स्वैच्छिक रूप से अपने व्यवसायिक प्रतिष्ठान बन्द रखे। बाबा के पार्थिव देह की अंतिम यात्रा के अनुपम स्वरूप व भव्यता को देखने वालों के मुख पर यही भाव रहा कि सच! दुनिया में विरले ही पुरुष ऐसे होते हैं, जिन्हें ऐसी भावपूर्ण अंतिम विदाई नसीब होती है।

जीवटता के धनी व दानवीर प्रवृत्ति के बाबा देश की अनेक प्रमुख धार्मिक, सामाजिक, स्वयंसेवी संस्थाओं से परोक्ष रूप से जुड़े रहे। उनका निधन समाज के लिए अपूरणीय क्षति है।

कहानी बनके जीये, आप तो जमाने में।
लगेगी सदियाँ हमें आप को भुलाने में।।

बाबा के विषय में कुछ कहना या लिखना वास्तव में सूरज को दीपक दिखाने के समान है। वीरप्रभु से यही प्रार्थना है कि निकट भवों में शीघ्रातिशीघ्र कर्मों का नाश कर मुक्ति को प्राप्त करें। और इस असीम दुख की घड़ी में पाटनी परिवार को दुःख सहने की क्षमता प्रदान करें।

बेला जैन, ५०६, गाँधी चौक, नसीराबाद (राज.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सादर श्रद्धाञ्जलि

धर्मपरायण, नि:स्पृही, प्रेरणापुंज, 'जैन गौरव' से विभूषित, शतायु युगपुरुष

आर.के. मार्बल परिवार के पितामह

परमश्रद्धेय श्री रतनलाल जी पाटनी

1899-2005

सब के प्रेरणास्रोत
जिनका संयमित, सत्यनिष्ठ, समर्पित जीवन,
सदैव एक दीपस्तम्भ की तरह
सभी के जीवन पथ को आलोकित
करता रहेगा

श्रद्धावनत

सर्वोदय जैन विद्यापीठ एवं जिनभाषित परिवार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि नं. UP/HIN/29933/24/1/2001-TC

डाक पंजीयन क्र.-म.प्र./भोपाल/588/2003-05

एक संगठन   एक मंच   एक विचार धारा

अखिल भारतीय जैन युवा सम्मेलन

हजारीबाग (झारखण्ड)

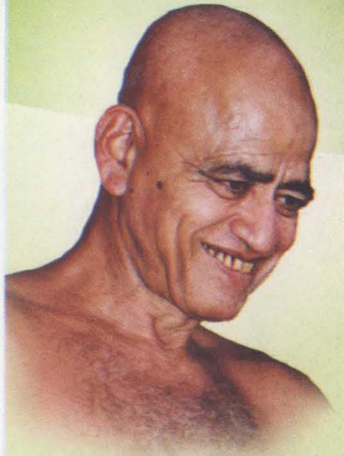

आचार्यश्री १०८ विद्यासागर जी महाराज

प्रिय साथियो,

भारतीय श्रमण संस्कृति के राष्ट्र संत **आचार्यश्री १०८ विद्यासागर जी महाराज** के परम प्रभावक शिष्य युवा तरुणाई के प्रखर वक्ता **पूज्य मुनिश्री १०८ प्रमाणसागर जी महाराज** के सान्निध्य में हजारीबाग (झारखण्ड) में **द्वितीय अखिल भारतीय जैन युवा सम्मेलन** का आयोजन **दिनांक 12-13 अक्टूबर 2005** को किया जा रहा है।

समाज के सभी नवयुवकों से सादर अनुरोध है कि आप अपनी संस्था के सभी पदाधिकारीगणों सहित इस आयोजन में सम्मिलित होकर युवा शक्ति को जागृत कर सृजनात्मक कार्य करने में अपना अमूल्य समय प्रदान करें।

उद्देश्य

- अखिल भारतीय स्तर पर युवा विचार धारा वाले बन्धुवर को संगठित कर एक मंच पर लाना।
- तीर्थ क्षेत्रों एवं अन्य धार्मिक स्थलों की रक्षा एवं प्रबन्धन में युवाओं की भागीदारी सुनिश्चित करना।
- युवा प्रतिभाओं को प्रोत्साहित कर राष्ट्रीय क्षितिज पर उभारना।
- युवा संगठन का प्रांतीय, संभागीय निकाय को जिला, शहर, गाँव एवं मोहल्ला स्तर पर गठित करना।
- अहिंसा एवं जीवदया का प्रचार प्रसार करना।
- व्यसनों में लिप्त हुए युवाओं को सात्विकता की ओर जोड़ने का प्रयास करना।

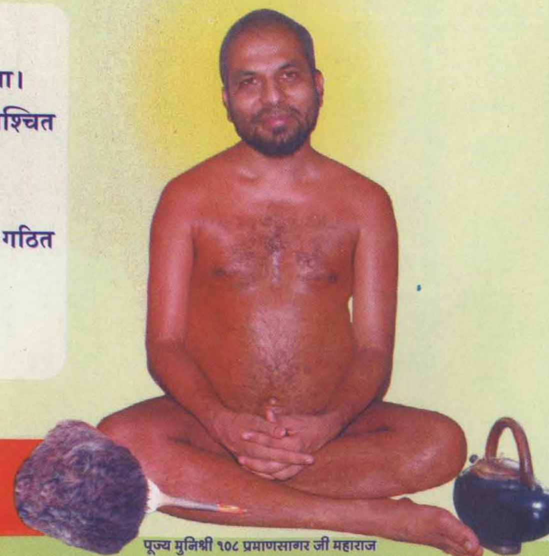

पूज्य मुनिश्री १०८ प्रमाणसागर जी महाराज

आयोजक : श्री दिगम्बर जैन पंचायत, हजारीबाग

संयुक्त तत्वावधान : जैन युवा परिषद्, जैन सेवा संघ - हजारीबाग

सम्पर्क सूत्र

अजय जैन छावड़ा 094311 40022, 099341 50344 • निर्मल जैन गंगवाल 094311 92298 • सुबोध जैन सेठी 094313 66999 • निर्मल जैन टोंग्याँ 094313 94819 • सुनील जैन लुहाड़िया 098351 36685 • संजय जैन अजमेरा 094311 85460

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक : रतनलाल बैनाड़ा द्वारा एकलव्य ऑफसेट सहकारी मुद्रणालय संस्था मर्यादित, जोन-1, महाराणा प्रताप नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित एवं सर्वोदय जैन विद्यापीठ 1/205 प्रोफेसर कॉलोनी, आगरा-282002 (उ.प्र.) से प्रकाशित।

Jain Education International   www.jainelibrary.org